अभिनन्दन

श्री राजेन्द्रसिंह बेदी के 'तुला-दान' द्वारा 'सामयिक साहित्य-सदन' हिंदी के पाठकों का परिचय एक प्रतिभाशाली, मौलिक और प्रगतिशील कहानी-लेखक से करा रहा है, इसका उसे उचित गर्व है। उर्दू-जगत् में बेदी साहब का नाम श्रेष्ठतम कहानी-लेखकों में भी बहुत ऊँचा है। उनकी ख्याति ने मुझे उनकी कहानियों को पढ़ने के लिए बाध्य किया और उनकी कहानियों के यौवन ने मुझे उनका प्रेमी बना लिया। मैंने उनसे हिंदी के क्षेत्र में आने का आग्रह किया। इसी का परिणाम यह 'तुला-दान' है। आज से लगभग बारह वर्ष पहले मैंने उर्दू के उस काल के उदीयमान और इस काल के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्री उपेन्द्र नाथ 'अश्क' को हिन्दी-क्षेत्र में खींचने का कार्य किया था। आज मुझे सन्तोष है कि हिंदी-भाषा के साहित्य-जगत में 'अश्क' साहब का आदरणीय स्थान बन गया है। मुझे इस बात का विश्वास है कि बेदी साहब भी हिंदी की दुनिया में बहुत शीघ्र ख्याति प्राप्त करेंगे।

बेदी साहब की कहानियों का विषय, पात्रों का चयन, वातावरण और लिखने की कला भारत के अन्य कहानी-लेखकों से भिन्न है और मौलिक तथा प्रभावशाली है। आज कल साहित्य की दुनिया में 'प्रगतिशील साहित्य' का नाम बहुत सुना जा रहा है। साहित्य, सभ्यता और संस्कृतियों की युग-युग से चली आने वाली धारणाओं पर कठोर आघात आज का प्रगतिशील लेखक कर रहा है। इस प्रकार के लेखकों में जितना उत्साह है—उतनी प्रतिभा नहीं है। वे केवल यूरोपीय साहित्य से सब कुछ ग्रहण कर उसी के विचारों को कुछ बदल कर उपस्थित करते हैं। सभी ऐसा करते हैं यह मैं नहीं कहता, लेकिन उनमें बहुसंख्या ऐसे लेखकों की है जिनकी रचनाएँ विदेशी साहित्य की

प्रतिध्वनि मात्र हैं। मुझे यह कहते हुए संकोच नहीं होता कि बेदी साहब ने जो कुछ दिया है उसमें पूर्ण मौलिकता है। वह किसी से प्रभावित होकर नहीं लिखते। उनका अपना व्यक्तित्व सब जगह सबल है। उन्हें मनुष्यों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने और उसकी आकर्षक तस्वीर खींच देने की प्रतिभा प्राप्त है।

जिस वर्ग से बेदी साहब कथानक और पात्रों का चयन करते हैं उसकी ओर हमारे साहित्यकारों का ध्यान प्रायः नहीं जाता था। प्राचीन साहित्य में सदा राजा-महाराजाओं को नायक—रानियों और राजकुमारियों को नायिका का स्थान प्राप्त होता रहा। उसके बाद साहित्यकारों ने धनाधीशों या उच्च वंशावतंसों को स्थान दिया। साथ ही साहित्य में वैभवपूर्ण वातावरण का ही मनोरञ्जक वर्णन होता रहा है। जिस प्रकार एक अलङ्कारों से सजी रूपवती राजकुमारी का चित्र एक चीथड़ों से लिपटी हुई मैली-कुचैली भिखारिन की अपेक्षा आँखों को अधिक मनोरम ज्ञात होता है उसी प्रकार साहित्य में वैभव और विलास के दृश्य अधिक सरस अपने आप बन जाते हैं। जिसे लोग निम्न वर्ग कहते हैं—उसका चित्र खींचते समय लेखक के पास बहुत थोड़ी ऐसी सामग्री होती है जो चित्र को मनोरम बना दे। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि निम्न वर्ग के पात्रों और उनके आस-पास के वातावरण की जैसे सजीव और प्रभावोत्पादक तस्वीर बेदी साहब खींचते हैं, उससे उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

बेदी साहब की कहानियों में अद्भुत घटनाओं की भरमार नहीं होती। उनके कथानक बहुत सादे और स्वाभाविक होते हैं। रात-दिन जीवन में होने वाली घटनाओं और सदा ही हृदय में उठने वाली भावनाओं का प्रभावशाली ढङ्ग पर चित्रण कर देना बेदी साहब की कला है। उनकी पैनी दृष्टि ही उनकी सबसे बड़ी निधि है। जिन घटनाओं, जिन वस्तुओं और जिन व्यक्तियों के प्रति साधारण लेखकों का ध्यान भी नहीं जाता या जाता है तो वे उन पर

विचार ही नहीं कर पाते, और यदि कर पाते हैं तो उनका कथा-भाग में उचित उपयोग करने की क्षमता उनमें नहीं होती, उन्हीं को वेदी साहब ऐसी खूबी से प्रयोग में लाते हैं कि पाठक आश्चर्य-चकित हो जाता है। वेदी साहब अपनी कहानियों में जो वातावरण निर्मित करते हैं वह सारी कहानी को मनोरञ्जक और प्रभावशाली बना देता है। इस वातावरण के निर्माण में उन्हें कल्पना से कार्य नहीं लेना पड़ता, बल्कि 'जीवन की सचाइयाँ' ही यह स्वाभाविक रूप में रख देते हैं।

वेदी साहब उस वर्ग के चितेरे हैं जिन पर बुद्धि और प्रतिभा के धनी लेखकों की कृपा नहीं होती। प्राचीन काल में जब साहित्य का उद्देश्य वैभव और प्रभुता के स्वामियों का मनोरञ्जन करना होता था तब उसी वर्ग का चित्रण पसन्द किया जा सकता था, लेकिन आज तो साहित्य का निर्माण सर्व-साधारण के लिए होता है और सर्व-साधारण समुदाय अपनी समस्याओं को उसमें देखना चाहता है—अपनी ही तस्वीर उसमें देखकर उसे आनन्द प्राप्त होता है यही कारण है कि वेदी साहब का साहित्य इतना पसंद किया जाता है। उर्दू-भाषा के साथ ही अब उन्होंने हिन्दी भाषा का भण्डार भरने का निश्चय किया है यह एक शुभ समाचार है।

प्रगतिशील लेखक होते हुए भी नीरस विचारों से वह कहानी को बोझल नहीं बनाते। उन्हें मनुष्य की व्यक्तिगत और समाज की सामूहिक शक्ति और दुर्बलता, शुभभावना और दुर्भावना, सुसंस्कार और कुसंस्कार की तस्वीरें खींच देना अभीष्ट है। लेखक अपनी ओर से एक शब्द भी नहीं कहता, न कहानी के पात्र राजनीति, और समाजनीति के सम्बन्ध में नई विचार-धाराओं पर विवाद करते हुए लंबे-चौड़े भाषण देते हैं। फिर भी वेदी साहब की कहानियों की प्रत्येक पंक्ति पाठक के हृदय में हलचल पैदा कर देती है। 'दस मिनिट वर्षा में' कहानी लेखक ने दो तस्वीरें पास-पास खींच कर रख दी हैं।

एक तस्वीर में दो धनी नवयुवक हैं—दूसरी में एक ग़रीब युवती है। ये दोनों तस्वीरें जब पास-पास रखी जाती हैं तो उनके बीच जो अन्तर है वह अपने आप व्यक्त हो जाता है। लेखक को पूंजी-पतियों को कोसने और गाली देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उन धनी युवकों की कुत्सित मनोवृत्ति को लेखक बिना किसी प्रयास के ही व्यक्त कर देता है। पाठक अपने आप पूंजीवाद की बुराइयों के विरुद्ध धारणा बना लेता है। बेदी साहब की कहानियाँ कला, उपयोगिता और दिलचस्पी सभी बातों में श्रेष्ठ हैं इसमें संदेह नहीं। उनकी भाषा में ज़ोर है और शैली में कहीं-कहीं तीखा व्यंग भी। मैं उनका हिंदी-जगत में आते समय अभिनंदन करता हूँ।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

ग्रहण

रूपो, शिबू, कल्थू और मुन्ना, होली ने असाढ़ी के कायस्थों को चार बच्चे दिए थे, और पाँचवां कुछ ही महीनों में जनने वाली थी। उसकी आँखों के गिर्द गहरे और काले घेरे पड़ने लगे गालों की हड्डियाँ उभर आईं और मांस पिचक गया। वह होली जिसे पहिले पहल मैया 'चानूरानी' कहकर पुकारा करती थी और जिसके स्वास्थ्य और सुंदरता का रसीला लोभी था अब गिरे हुए पत्ते की तरह पीत तथा मृत-प्राय हो चुकी थी।

आज रात चन्द्र-ग्रहण था, संध्या से ही चाँद ग्रसा जाता है। होली को आज्ञा न थी कि वह कोई वस्त्र फाड़ सके—गर्भस्थ बच्चे के कान फट जायँगे, वह सी न सकती थी क्योंकि सीने से मुँह मिला बच्चा पैदा होगा, अपने मायके पत्र न लिख सकती थी क्योंकि इसके टेढ़े मेढ़े अक्षर बच्चे के चेहरे पर लिख जायँगे और अपने मायके पत्र लिखने का उसे बड़ा चाव था।

मायके का नाम आते ही उसका सारा शरीर एक अज्ञात प्रेरणा से काँप उठता। वह मायके थी तो उसे ससुराल का इतना चाव था, लेकिन अब वह ससुराल से इतनी तृप्त हो चुकी थी कि वहाँ से भाग जाना चाहती थी। इस बात का उसने कई बार निश्चय भी किया लेकिन हर बार असफल रही। उसका मायका असाढ़ी ग्राम से पचीस कोस की दूरी पर था। समुद्र के किनारे हरफूल बन्दर पर संध्या के समय स्टीमर लाञ्च मिल जाता था और तट के साथ साथ डेढ़ दो घंटे की यात्रा के उपरान्त उसके मायके के ग्राम के बड़े मंदिर के जंगाले हुए कलश दिखाई देने लगते।

आज संध्या से पहले ही रोटी, चौका-बर्तन आदि के काम से अवकाश पाना था। मैया कहती थी, ग्रहण से पहले भोजनादि कर लेना चाहिए—नहीं तो प्रत्येक क्रिया गर्भस्थ बच्चे के शरीर और भाग्य पर प्रभाव डालती है। मानो कि वह कुरूप चौड़े-चौड़े नथनों वाली मोटी मैया अपनी बहू हमीदा बानो के पेट से किसी अकबर महान की आशा रखती है। चार बच्चों, तीन मर्दों, दो औरतों और चार भैंसों पर निर्भर यह बड़ा परिवार और अकेली "होली"। दोपहर तक तो होली बर्तनों का ढेर साफ़ करती रही, फिर पशुओं के लिए बिनौले, खली और चने भिगोने चली, यहाँ तक कि उसके कूल्हे पीड़ा के मारे फटने लगे और विद्रोही बच्चा पेट में अपनी अनियमित परन्तु होली को तड़पा देनेवाली क्रियाओं से विरोध-प्रदर्शन करने लगा। होली थकान अनुभव कर चौकी पर बैठ गई—लेकिन वह बहुत समय तक चौकी या फ़रश पर बैठने के क़ाबिल न थी और फिर मैया के विचार के अनुसार चौड़ी-चकली चौकी पर बैठने से बच्चे का सर चपटा हो जाता है। मूढ़ा हो तो अच्छा है। कभी कभी होली मैया और कायस्थों की आँख बचाकर खाट पर सीधी पड़ जाती और पेटपूरित कुत्तियों की तरह टाँगों को अच्छी तरह फैला कर जम्हाई लेती और फिर उसी तरह काँपते हुए हाथों से अपने नन्हें नरक को सहलाने लगती।

वह सीतल की बेटी है यह बात सोचने से वह अपने आपको रोक न सकती थी। सीतल सारंगदेव ग्राम का एक धनी साहूकार था और सारंगदेव ग्राम के आस पास के बीस गाँवों के किसान उससे ब्याज पर रुपया लेते थे। इस पर भी उसे कायस्थों के यहाँ अपमानित किया जाता था। होली के साथ कुत्तों से भी बुरा

व्यवहार होता था, कायस्थों को तो बच्चे चाहिएं, होली नरक में जाए अर्थात् सारे गुजरात में यह कायस्थ ही कुल-वधू का ठीक अर्थ समझते थे।

प्रति डेढ़ वर्ष बाद वह एक नया कीड़ा घर में रेंगता हुआ देख कर प्रसन्न होते थे और बच्चे के कारण खाया-पिया होली के शरीर को नहीं लगता था। सम्भवत: उसे रोटी भी इसीलिए दी जाती थी कि पेट में बच्चा माँगता था और इसी लिए उसे गर्भ के आरम्भ में चाट और अब फल स्वतन्त्रता से दिए जाते थे।

"देवर है तो वह अलग पीट लेता है।" होली सोचती थी। और सास का कोसना मार-पीट से कहीं बुरा है, और बड़े कायस्थ जब डाँटने लगते हैं तब पाँव तले से धरती खिसक जाती है। इन सब को भला मेरी जान लेने का क्या अधिकार है? रसीले की बात तो दूसरी है—शास्त्रों ने उसे परमात्मा की पदवी दी है। वह जिस छुरी से मारे उस छुरी का भला...... लेकिन क्या शास्त्र किसी स्त्री ने रचे हैं? और मैया की तो बात ही निराली है। शास्त्र किसी स्त्री ने लिखे होते तो वह अपनी जाति पर इससे भी अधिक प्रतिबन्ध लगाती। ...... राहु अपने नए वर्ष में बड़े धैर्य से अमृत पान कर रहा था। चाँद और सूर्य ने भगवान विष्णु को सूचना दी और भगवान ने सुदर्शन से राहु के दो टुकड़े कर दिए। उसका सिर और धड़ दोनों आकाश पर जाकर राहु और केतु बन गए। सूर्य और चन्द्र दोनों इनके ऋणी हैं। अब वे प्रति वर्ष दो बार चन्द्र और सूर्य से बदला लेते हैं और होली सोचती थी, भगवान के खेल भी न्यारे हैं और राहु की शकल भी कैसी अद्भुत है। एक काला सा राक्षस सिंह पर सवार, देखकर कितना डर लगता है—रसीला

भी तो आकृति से राहु ही दिखाई देता है। मुन्ना के जन्म पर अभी छल्ला भी न नहाई थी कि आ उपस्थित हुआ। क्या मुझे भी इसका ऋण चुकाना है ?

इसी समय होली के कानों में माँ बेटे के आने की भनक पड़ी। होली ने दोनों हाथों से पेट को सँभाला और उठ खड़ी हुई और जल्दी से तवे को धीमी धीमी आँच पर रख दिया—अब उसमें झुकने की शक्ति न थी कि फूँकें मार कर आग जला सके। उसने यत्न भी किया, लेकिन उसकी आँखें फट कर बाहर आने लगीं।

रसीला एक नया मरम्मत किया हुआ छाज (सूप) हाथ में लिए भीतर आया, उसने जल्दी से हाथ धोए और मुँह में कुछ बुड़बुड़ाने लगा। उसके पीछे मैया आई और आते ही बोली—

"बहू, अनाज रखा है क्या ?"

होली डरते डरते बोली—"हाँ हाँ रखा है—नहीं रखा याद आया, भूल गई थी मैया ...."

"तो बैठी कर क्या रही है नवाबजादी ?"

होली ने करुणाजनक दृष्टि से रसीले की ओर देखा और बोली, "जी मुझसे अनाज की बोरी हिलाई जाती है कहीं ?"

मैया निरुत्तर हो गई और यूँ भी उसे होली की अपेक्षा उसके पेट में बच्चे की अधिक परवाह थी—शायद इसलिए होली की आंखों में आंखें डालते हुए बोली—"तूने सुरमा क्यों लगाया है री ? रांड जानती भी है आज ग्रहण है—जो बच्चा अन्धा हो जाए तो तेरे जैसी वेश्या उसे पालने चलेगी।"

होली चुप हो गई और भूमि की ओर दृष्टि गाढ़े मुँह में कुछ बुड़बुड़ाती गई। और सब हो जाए लेकिन सिर की गाली उसे

असह्य थी। उसे बुड़बुड़ाते देखकर मैया और भी बकती झकती चाबियों का गुच्छा ढूँढने लगी। एक मैले दीवट के पास सुरमा पीसने का खरल रखा हुआ था, उसमें से चाबी का गुच्छा निकाल कर वह भंडारे की ओर चली गई। रसीले ने एक अतृप्त दृष्टि से होली को देखा। इस समय होली अकेली थी—रसीले ने धीरे से आँचल छुआ। होली ने डरते-डरते दामन झटक दिया और अपने देवर को आवाज़ देने लगी—जैसे दूसरे किसी की उपस्थिति चाहती हो। इस दशा में मर्द को ठुकरा देना कोई साधारण बात नहीं होती। रसीला आवाज़ को चबाते हुए बोला—

"मैं पूछता हूँ भला इतनी जल्दी काहे की थी ?

जल्दी कैसी ?"

रसीला पेट की तरफ इशारा करते हुए बोला—"यही......तुम भी तो कुतिया हो कुतिया।"

होली सहम कर बोली, "तो इसमें मेरा क्या दोष है ?"

होली ने अनजाने ही रसीले को वहशी, बदचलन, विषय-लोलुप सभी कुछ कह दिया—चोट सीधी पड़ी। रसीला के पास इस बात का कोई उत्तर न था। निरुत्तर आदमी का उत्तर चपत होती है और दूसरे ही क्षण उँगलियों के निशान होली के गालों पर दिखाई देने लगे।

उस वक्त मैया बरदों की एक टोकरी उठाए हुए भंडारे की ओर से आई और बहू से दुर्व्यवहार करने के कारण बेटे को झिड़कने लगी। होली को रसीले पर तो क्रोध न आया वरंच मैया के इस स्वभाव से जल-भुन गई। "रांड आप मारे तो इससे भी ज़्यादा और जो बेटा कुछ कहे तो दुःख मानती है—बड़ी आई है।"

होली सोचती थी, "कल रसीले ने मुझे इस लिए मारा था कि

मैंने उसकी बात का जवाब नहीं दिया और आज इसलिए मारा है कि मैंने बात का जवाब दिया है—मैं जानती हूँ वह मुझसे क्यों नाराज़ है। क्यों गालियाँ देता है। मेरे खाने पकाने उठने बैठने में उसे क्यों नहीं सावधानी दिखाई देती और मेरी यह हालत है कि नाक में दम आ चुका है और मर्द औरत को मुसीबत में फंसा कर आप अलग हो जाते हैं—ये मर्द ····· !

मैया ने कुछ बासमती, दालें और नमक आदि रसोई में बखेर दिये और फिर एक भीगी हुई तराजू में उन्हें तोलने लगी। तराजू गीला था यह मैया भी देख रही थी—और जब बासमती चावल पेंदे में चिमट गए तो बहू मरती करती फूहड़ हो गई और आप इतनी सुघड़ कि नये दुपट्टे से पेंदा साफ़ करने लगी। जब बहुत मैला हो गया तो दुपट्टे को सिर से उतार होली की तरफ फेंक दिया और बोली—'ले धो डाल।'

अब होली नहीं जानती बेचारी कि वह रोटियाँ पकाए या दुपट्टा धोए, बोले या न बोले, हिले या न हिले, वह कुतिया है या नवाबजादी। उसने दुपट्टा धोना ही उचित समझा—उस वक्त चाँद प्रसा जाने को ही था, बच्चा धुले हुए कपड़े की तरह चुर-मुर सा पैदा होगा और यदि मास दो मास पश्चात् बच्चे का कुरूप चेहरा देखकर उसे कोसा जाए तो इसमें होली का क्या दोष है ? लेकिन दोष और निर्दोष की तो बात ही अलग है क्योंकि यह कोई सुनने के लिए तैयार नहीं कि इसमें होली का क्या अपराध है ?—सब अपराध होली का है।

इसी समय होली को सारंगदेव ग्राम याद आ गया। किस प्रकार वह आश्विन के आरम्भ में दूसरी स्त्रियों के साथ गरबा नाचा

करती थी और भाभी के सिर पर रखे हुए घड़े के छेदों में से रोशनी फूट-फूट कर दालान के चारों कोनों को उज्ज्वल करती थी—इसी समय सब स्त्रियाँ मेहँदी रँगे हाथों से तालियाँ बजाया करती थीं और गाया करती थीं—

माहँदी तवावी मालवे
रान्हु रंग गयी गुजरात रे
माहँदी रङ्ग लाग्यो रे

उस वक्त वह एक उछलने कूदने वाली अल्हड़ छोकरी थी—छंद-मुक्त एक कविता। जो चाहती पूरा हो जाता था, घर में सबसे छोटी थी न। नवाबजादी तो न थी—और उसकी सहेलियाँ—वह भी अपने अपने ऋणदाताओं के पास जा चुकी होंगी।........

सारङ्गदेव ग्राम में ग्रहण के अवसर पर जी खोल कर दान पुण्य किया जाता है। स्त्रियाँ एकत्रित होकर त्रिवेद घाट पर स्नान के लिए जाती हैं। फूल, नारियल, बताशे समुद्र में छोड़ती हैं। पानी की एक उछाली मुँह खोले हुए आती है और सब पत्र-पुष्पों को स्वीकार कर लेती है। इस समय के स्नान से सब नर-नारियों के पापों का क्षय हो जाता है। वे पाप जो वे गत वर्ष भर करते रहे हैं, स्नान से सब धुल जाते हैं। शरीर और आत्मा पवित्र हो जाते हैं। सागर की लहर लोगों के सब पापों को बहाकर दूर बहुत दूर एक अज्ञात, अलंघ्य और अतुल सागर में ले जाती है।...एक वर्ष पश्चात् फिर लोगों के शरीर पापमय हो जाते हैं—फिर भ्रमे जाते हैं—फिर दया की एक लहर आती है और फिर पवित्र और शुद्ध।

जब ग्रहण शुरू होता है और चाँद की पवित्र और दिव्य ज्योति पर दाग लग जाता है तो कुछ क्षणों के लिए चारों ओर

शान्ति छा जाती है और फिर राम नाम का जाप आरम्भ होता है। फिर घंटे, शङ्ख, रणसिंहे एकदम बजने लगते हैं। इस शोर में स्नान के बाद सब स्त्री-पुरुष भीड़ के रूप में गाते बजाते गाँव का वापिस लौट जाते हैं।

ग्रहण के समय में गरीब लोग गली और कूचों में दौड़ते हैं। लँगड़े बैसाखियाँ घुमाते हुए अपनी अपनी झोलियाँ थामे सेग के चूहों की तरह एक दूसरे पर गिरते पड़ते भागते चले जाते हैं, क्योंकि राहु और केतु ने रमणीय चाँद को अपने पाश में पूरी तरह से जकड़ लिया है। करुणार्द्र हिन्दू दान देता है ताकि निर्बल चाँद को छोड़ दिया जाए और दान लेने के लिए भिखारी—'छोड़ दो, छोड़ दो, दान का समय है—छोड़ दो' का शोर मचाते हुए मीलों की यात्रा पूरी कर लेते हैं।

चाँद ग्रसा जानेवाला ही था—होली ने बच्चों को बड़े कायस्थ के पास छोड़ा—एक मैली-कुचैली धोती बाँधी और स्त्रियों के साथ हरफूल बन्दर की ओर स्नान के लिए चल पड़ी।

अब मैया, रसीला, बड़ा लड़का शिब्बू और होली सब समुद्र की ओर जा रहे थे—इनके हाथ में पुष्प थे, गजरे थे, और आम के पत्ते, और बड़ी माँ के हाथ में रुद्राक्ष की माला के अतिरिक्त कपूर था जिसे वह जला कर सागर की लहरों पर छोड़ देना चाहती थी ताकि मृत्यु के उपरान्त परलोक यात्रा में उसका मार्ग उज्ज्वल रहे और होली डरती थी—क्या उसके पाप समुद्र के जल से धोए धुल जायेंगे।

सागर तीर घाट से पौन मील के लगभग एक लांच खड़ा था, वह स्थान हरफूल बन्दर का एक भाग था—बन्दर के छोटे वक्र से

किनारे और एक लघु से डाक पर कुछ टंडल अस्तगत सूर्य में अंधेरे और उजाले की ऊहापोह के विरुद्ध छोटे छोटे अव्यवस्थित से आकार बना रहे थे और लांच के किसी केबिन से एक हल्की सी टिम-टिमाती हुई रोशनी रजत-श्वेत जल की लहरों पर नाच रही थी—इसके बाद एक चर्खी सी घूमती हुई दिखाई दी। कुछ छाया चित्र से एक अजगर रूपी रस्से को खींचने लगे। आठ बजे स्टीमर लांच की अन्तिम सीटी थी। फिर वह सारङ्गदेव ग्राम की ओर चल पड़ेगा। अगर होली इस पर सवार हो जाए तो फिर डेढ़ दो घण्टे में वे चांदनी में नहाते हुए शताब्दियों से परिचित कलश दिखाई देने लगें—और फिर वही मां ···बालपन और गरबा नृत्य ·····

होली ने एक नज़र से शिब्बू की तरफ देखा—शिब्बू हैरान था कि इसकी माँ ने इतनी भीड़ में झुककर उसका मुंह क्यों चूमा और उष्णबिन्दु कहाँ से उसके गालों पर आ पड़े—उसने आगे बढ़ कर रसीले की उँगली पकड़ ली—अब घाट आ चुका था जहां से औरतें और मर्द अलग होते थे—सदा के लिए नहीं, केवल कुछ घण्टों के लिए—इसी जल की साक्षी में वे अपने मर्दों से बाँध दी गई थीं—जल में भी क्या अनुपमेय अज्ञात शक्ति है—और दूर से लांच की टिमटिमाती रोशनी होली तक पहुँच रही थी—

होली ने भागना चाहा पर वह भाग भी तो न सकती थी. उसने अपनी हल्की सी धोती को कस कर बाँधा—धोती नीचे की ओर ढलक जाती थी ···आध घंटे में वह लांच के सामने खड़ी थी ·· लांच के सामने नहीं सारङ्गदेव ग्राम के सामने ··· वे कलश, मन्दिर के घंटे ···· लांच की सीढ़ी ·· और होली को याद आया कि उसके पास तो टिकट के लिए पैसे नहीं हैं।

वह कुछ समय तक लांच के एक कोने में बेसुध सी होकर बैठी रही—पौने आठ बजे के लगभग एक टंडल खलासी आया और होली से टिकट माँगने लगा—टिकट न पाने पर वह चुपचाप वहाँ से टल गया। कुछ देर बाद सेवकों की काना-फूसी सुनाई देने लगीं फिर अँधेरे में सूक्ष्म सी हँसी और बातें करने की आवाज़ें आने लगीं। कोई कोई शब्द होली के कान में भी पड़ जाता—मुर्गी ······ इसे ·· चाबियाँ मेरे पास हैं ······ पानी ज़्यादह होगा ······ ।

तदनन्तर कुछ पाश्विक सी हँसी सुनाई दी और थोड़ी देर बाद तीन चार आदमी होली को लांच के एक अँधेरे कोने की ओर धकेलने लगे, उसी समय आबकारी का एक सिपाही लाँच में उपस्थित हुआ। ठीक उसी समय जब कि दुनिया होली की आँखों में अन्धेर हो रही थी—होली को आशा की एक किरण दिखाई दी—वह सिपाही सारङ्गदेव ग्राम का ही एक छोकरा था और मायके के सम्बन्ध से भाई था—छै वर्ष हुए वह बड़ी उमंगों के साथ गांव से बाहर निकला था और साबरमती फाँद कर किसी अज्ञात देश को चला गया था। कभी कभी विपत्ति के समय भी मनुष्य की बुद्धि सचेत हो जाती है। होली ने सिपाही को आवाज़ से पहचान लिया और कुछ उत्साह से बोली—कल्थूराम!

"होले।"

होली विश्वास भरी लेकिन भर्राई हुई आवाज़ में बोली—

"कल्थू भैया ······ मुझे सारङ्गदेव ग्राम में पहुँचा दो ······ ।

कल्थूराम समीप आया और एक टंडल को घूरते हुए बोला—सारङ्गदेव जाओगी होले? और फिर अपने सामने खड़े आदमी से बोला—"तुमने इसे यहाँ क्यों रखा है भाई?"

टंडल जो सबसे निकट था बोला—

"बेचारी कोई दुखिया है—इसके पास तो टिकट के पैसे भी न थे—हम सोच रहे थे कि इसकी क्या सहायता कर सकते हैं ?"

कस्थूराम ने होली को साथ लिया और लांच से नीचे उतर आया—डाक पर क़दम रखते हुए बोला—

"होले ···· क्या तुम असाढ़ी से भाग आई हो ?"

'हां।'

"यह शरीफ़ज़ादियों का काम है ? ···और जो मैं कायस्थों को खबर दूँ तो ?"

होली डर से कांपने लगी—वह न तो नवाबज़ादी थी और न शरीफ़ज़ादी। इस जगह और ऐसी दशा में वह कस्थूराम को कुछ कह भी तो न सकती थी—वह अपनी कमज़ोरी को अनुभव करती हुई मौन रही और सागर की लहरों के तूफ़ान की आवाज़ सुनने लगी। फिर इसके सामने लांच के रस्से ढीले किए गए—एक हल्की सी विसिल हुई और धीरे धीरे सारङ्गदेव ग्राम होली की दृष्टि से ओझल हो गया। उसने एक बार पीछे की ओर देखा। लांच की हल्की सी रोशनी में उसे आग की एक लम्बी सी रेखा लांच का पीछा करती हुई दिखाई दी।

कस्थूराम बोला —'डरो नहीं होले मैं तुम्हारी यथा-सम्भव सहायता करूँगा। यहाँ से कुछ दूर नाव पड़ती है—पौ फटे ले चलूँगा। यूँ घबराओ नहीं। रात की रात इस सराय में विश्राम कर लो।"

कस्थूराम होली को सराय में ले गया। सराय का मालिक बड़े आश्चर्य से कस्थूराम और उसकी साथिन को देखता रहा—आखिर

जब वह न रह सका तो उसने कत्थूराम से बहुत धीमी आवाज़ में पूछा

"यह कौन है?"

कत्थूराम ने जवाब दिया—"मेरी पत्नी है।"

होली की आँखें पथराने लगीं—एक बार उसने अपने पेट को सहारा दिया और दीवार का सहारा लेकर बैठ गई। कत्थूराम ने सराय में एक कमरा किराए पर लिया। होली ने डरते डरते उस कमरे में क़दम रखा—कुछ समय पीछे कत्थूराम भीतर आया तो उसके मुख से मदिरा की गंध आ रही थी।

सागर की एक बड़ी भारी उछाली आई—सब पत्र-पुष्प, बताशे, आम की शाखाएँ, गजरे और जलता हुआ कपूर बहाकर ले गई ·· दूर बहुत दूर एक अज्ञात, अलंघ्य, अतुल सागर की ओर जहाँ अन्धकार ही अन्धकार है। फिर शङ्ख बजने लगे। उस समय सराय से कोई स्त्री निकल कर भागी सरपट—बार-बार वह गिरती थी भागती थी ··· पेट पकड़ कर बैठ जाती, हांपती और दौड़ने लगती ···उस समय आकाश पर चन्द्र पूरा ग्रसा जा चुका था। राहु और केतु दोनों ने जी भर कर ऋण वसूल किया था। दो धुँधली छाया मूर्तियाँ उस स्त्री की सहायता के लिए इधर उधर दौड़ रही थीं ··· चारों ओर अन्धकार था—और दूर असाढ़ी से हल्की हल्की आवाज़ें आ रही थीं—

"दान का समय है ··· छोड़ दो ··· छोड़ दो छोड़ दो ··"

हरफूल बन्दर से आवाज़ आई—

"पकड़ लो ··· पकड़ लो ··· पकड़ लो ······"

"छोड़ दो ··दान का समय है"···"पकड़ लो" ···"छोड़ दो !!"

बुकी

"१६ ?"

"जी हां—१६" तीसरी पंक्ति में बुकी ने एक हाथ से अपने बालों को दबाते हुए कहा—'आपको कष्ट उठाने का अवसर ही न आएगा साब ''कन्डक्टर आपकी सहायता करेगा।"

'शुक्रिया शुक्रिया' (धन्यवाद) करते हुए युवक मुस्कराया और उसने एक और चवन्नी काउन्टर पर रख दी। चवन्नी जेब में रखते हुए बुकी ने आँखें बन्द करली, मानो उसका मस्तिष्क बहुत थक गया हो, वह दिन भर कलकत्ते की एक बीमा कम्पनी में टाइप करती थी और रात को इस विशालकाय मनोरम सिनेमा में टिकटें बेचा करती थी। थोड़े से वेतन के अतिरिक्त किसी रंगीले युवक के लिए किसी युवती के पार्श्व में सीट बुक कर देने के प्रतिकार में उसे चवन्नी अधिक मिलती थी और उसकी आय पर एक बड़ा परिवार पल रहा था। एक वृद्धा हठी माँ थी जो भोजन मिलने में तनिक विलम्ब हो जाने पर अपना मुँह आप नोच लेती थी। इसके अतिरिक्त एक विधवा बहिन थी जिसके पति महाशय ने विधवा होने से दो वर्ष पहले ही उसे केवल इस लिए त्याग दिया था कि आग जलाने से पहिले वह सारे घर को धूम्रावेष्टित कर देती थी और फिर छोटे भाई थे और भांजे ''।

कुछ समय पश्चात् ममोले की सी तेज़ चाल के साथ वही युवक काउन्टर की तरफ़ आया और आते ही उसने अपनी

उँगलियाँ लकड़ी की काउंटर पर बजाईं और बोला—'लेकिन आज वहाँ तो कोई लड़की नहीं।

बुढ़ी ने आँखें खोलते हुए कहा—कहीं बाहर होगी, साब, उसने मुझसे टिकट खरीदा है-मैं समझती हूँ आपकी प्रतीक्षा करती होगी।" "उफ़" युवक ने विकलता से कहा—"सदा ऐसा ही तो होता है, सिस ऍमि सदा ऐसा ही तो होता है।

फिर वह युवक कुछ दूर जाकर सागवान के सुन्दर चौखटों में लगे हुए स्टिल्स को देखने लगा और अधीरता के आवेश में उसने 'आज रात्रि' के लाल लाल लेबल फाड़ने शुरू कर दिये। फिर बुढ़ी के पास लौटते हुए बोला, "निराशा से तो प्रतीक्षा भली है।"

बुढ़ी इस चंचल युवक की ओर देख कर मुस्कराई और इसके सुन्दर बालों को सराहने लगी—कितने अच्छे हैं इसके बाल घनी और चिन्ता-ग्रस्त सेठों की नाईं वह गंजा नहीं, न तोंदीला है और न दुबला। बस ठीक है और इसके केश धान के उन खेतों की तरह हैं जिन्होंने वर्षा-वाहक वायु से पूरा पूरा लाभ लिया हो। इसकी आकृति चाल-ढाल और बातों से मदिरा की गंध आती है जब कि संभवत: इसने मदिरा नहीं पी। इसका कारण यही है कि वह बहुत ही अधिक युवा है। जैसे अंगूर पक जाते हैं तो उनसे गंध आने लगती है।

कुछ देर बाद वह युवक पर्दे उठा कर बड़े ध्यान से छत को देखने लगा, छत में कृत्रिम सितारे चमक रहे थे, वह जानता था कि जब सिनेमा में रोशनी बुझा दी जाएगी, तो ये सितारे और अधिक चमकने लगेंगे और बहुत आकर्षक जान पड़ेंगे, छत की ओर दृष्टि डालने से आकाश का धोखा होगा और वह निश्चय ही

इस दृश्य को पसंद करेगा। और अपने साथ बैठी हुई लड़की से कहेगा—सितारे कितने मनोहर हैं!" और यह सत्य है कि उसने ताराच्छन्न आकाश पर कभी दृष्टि भी नहीं दौड़ाई थी, और न उस प्राकृतिक कलकत्ते को, जो प्रतिदिन रात को आकाश पर दिखाई देता था, पसंद किया है। लेकिन छत पर चमकते हुए नक्षत्रों को तो वह इसलिए पसंद करता था कि इन से सचमुच के नक्षत्रों का धोका होता था और मनुष्य सदा सत्य की अपेक्षा उसके मिथ्या (कृत्रिम) को पसंद करता है।

फिर वह युवक बरामदे में एक दीवार के सहारे खड़ा हो गया। बुकी को विश्वास था कि वह इस बेफिकर युवक को पसंद नहीं करती, अपितु बड़ी सुविधा से घृणा कर सकी है। इसका कारण यह है कि वह बहुत करुणामय थी, और संभवत: इसीलिए वह इसके सम्बन्ध में अपनी कल्पना को प्रेमभाव से अक्षुण्ण रखना चाहती थी। नहीं तो उसके लिए यह कितना सहल था कि शो शुरू हो जाने पर बुकिंग आफिस के सामने हाऊस फुल का बोर्ड लगा कर उस युवक के साथ की सीट पर जा विराजती।

बरामदे की दीवार पर नया पालिश हुआ था—इस लिए युवक के वस्त्र कुछ खराब भी हो गए, लेकिन परे हट कर उसने अपनी उँगली से दीवार को छुआ, मानों कि वस्त्रों के खराब हो जाने से उसे दीवार पर नई पालिश की जाने का विश्वास ही न आता हो। फिर उसने शून्यदृष्टि से सिनेमा की घड़ी की ओर देखा जोकि दाईं दीवार से हटाकर मैनेजर के कमरे के ऊपर लगा दी गई थी। उसने घड़ी को अपनी असली जगह पर देखकर फिर वहीं देखा जहाँ से वह उठा ली गई थी। बुकी सोचने लगी, मानव का स्वभाव भी अद्भुत है—

जानता है कि एक वस्तु इस स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर बदल दी गई है, लेकिन न जाने वह क्यों एक बार फिर उसी स्थान को देखता है जहाँ से वह वस्तु उठा ली गई हो, जैसे कि उसकी प्रवृत्ति इस परिवर्तन को एकाएक स्वीकार नहीं करती और सम्भवतः इसी लिए उसे २४ परगने के देहात में व्यतीत किए गए जीवन के दिन बार-बार याद आते थे—वे दिन जब कि वह सभ्य जगत से दूर अपने पितामह के पास सुख और शान्ति का जीवन बिताती थी। लेकिन अब कलकत्ते जैसे सभ्य नगर में जीवन के स्तर को स्थिर रखने के लिए उसे क्या कुछ करना पड़ता था।

चुकी ने अपने सामने पड़े हुए सीटों के प्लान पर दृष्टि दौड़ानी शुरू की। आखिर ऐसे ही चञ्चल युवकों को किसी लड़की के पार्श्व में स्थान देने से उसे चवन्नी मिलती थी। उसकी उँगली चित्र में रिक्त स्थानों के साथ साथ दौड़ने लगी। दूरस्थ युवक को चुकी के नखों पर गुलाबी पालिश चमकता हुआ दिखाई दे रहा था और वह युवक घूर-घूर कर उस चमकते हुए पालिश को देखने लगा, मानों उसे उनके पालिश होने में विश्वास न आता हो और वह इन नखों को छूकर देखना चाहता हो ...... ।

२६—२७—३० चौथी पंक्ति १२ ...... चुकी की दृष्टि एक सीट पर जा रुकी वह शायद इस सीट पर निशान लगाना भूल गई थी इस सीट के लिए भी तो एक लड़की ने टिकट खरीदा था—वह इस को जानती तो थी।

मिसेज़ वमोज़ा। आह—उसके साथ मिस्टर वमोज़ा नहीं थे—वे थे या नहीं थे। चुकी हल्के हल्के सिर-दर्द में बिल्कुल भूल चुकी थी, उसे तो उनकी शक्ल तक याद न रही थी, चुकी ने अपने

थके हुए मस्तिष्क पर ज़ोर डालना शुरू किया यहाँ तक कि वह इस चवन्नी को कोसने लगी जो उसे इस काम के लिए मिलती थी।

'जैन्टल मैन' बुकी ने युवक को बुलाते हुए कहा, मैंने आपकी सीट चौथी पंक्ति में १३ नं. पर रखी है और १२ पर मिस वसोज़ा की जगह है और बुकी ने जान बूझकर मिसेज़को मिस कहा—आखिर प्रकृति ने स्त्री के माथे पर तो ऐसी विशेषता का कोई चिन्ह नहीं रखा। और फिर बुकी को अपनी चवन्नी प्यारी थी—उसे अपनी मां से बहुत स्नेह था और अपनी बहिन पर उसे बहुत तरस आता था।

युवक ने अपना हैट उठाते हुए कहा, "धन्यवाद" और हाल के भीतर प्रवेश किया।

बुकी ने एक सिगरेट सुलगाया और फिर मानचित्र का गम्भीरता से अध्ययन करने लगी—जब वह ऐशट्रे (राख फेंकने वाली रिकाबी) को अपने निकट सरका रही थी तो एक कुरूप सा लड़का आया और उसके समीप आकर खड़ा हो गया। बुकी ध्यानपूर्वक उसके चेहरे की ओर देखने लगी। वह अभी अल्पवयस्क था, उसकी मसें भीग रही थीं और उसके चेहरे से मालूम होता था कि वह स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता, परन्तु जानना चाहता था। माँ और बहिन के अतिरिक्त उसने संसार में कोई स्त्री नहीं देखी थी, और उसके मुखड़े पर हल्की हल्की लज्जा के पीछे बहुत सा भय दिखाई दे रहा था जो कि उसके चेहरे के भद्दे अवयवों को और भद्दा बना रहा था।

लड़के ने टिकट के पैसों के अतिरिक्त एक और चवन्नी बुकी की ओर सरका दी। बुकी का मुँह खुला रह गया। "तुम चाहते हो......" वह बोली और चवन्नी को एक नज़र से देखते हुए उसने

जेब में रख लिया और फिर अपने सामने पड़े हुए प्लान पर झुक गई। हाऊस फुल था—केवल १६ नं० का स्थान रिक्त था—वही स्थान जो उसने सुन्दर युवक के लिए पहले बुक किया था लेकिन जो साथ की सीट में लड़की न होने से रिक्त रह गई थी। बुकी ने सोचा—अब वह लड़की ज़रूर आ बैठेगी—कितनी सुन्दर थी वह लड़की वह 'ब्लांड' और उसके बालों की लहरें यों दिखाई देती थीं जैसे धान के खेत पर से हवा सरसराती हुई चल रही हो। शायद उसने बाल किसी युवक को आकर्षित करने के लिए बनाए थे। उसके पार्श्व में इस मूर्ख, कुरूप छोकरे को स्थान देना उस लड़की का अपमान करना था और यह छोकरा नव आगन्तुक ही नहीं था बल्कि बिल्कुल गँवार था। चौबीस परगना का रहने वाला ही तो दिखाई देता था। उसके चेहरे से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि न तो वह छत के सितारों की प्रशंसा से वार्तालाप आरम्भ कर सकता है और न ही उस लड़की के केशों की वह धान के खेत से उपमा दे सकता है—वह गधा तो अकृत्रिम सितारों को पसन्द करता था और कहीं से धान काटता उठ कर कलकत्ते चला आया था।

युवकों की एक टोली उसकी ओर बढ़ी आ रही थी लेकिन सब स्थान रुक चुके थे—प्लान सारे का सारा बुकी के हाथ से लगाए चिन्हों से लाल हो रहा था—उसने हाथ के इङ्गित से सब को बता दिया कि अब इस दर्जे में कोई स्थान नहीं है और वे युवक अपने ओवरकोट थामे और पतलून के पाँयचे उठाए वापिस चले गए।

आकाश से नन्हीं-नन्हीं बूँदा-बाँदी होने पर सिनेमा के बरामदे

रज्ञा-गृह बन गए थे। इसके बाद 'मॉनसून' की बड़ी जलभरी बौछारें आने लगीं और कतिपय छोकरियाँ अपने गाऊन सँभालती हुईं सिनेमा की 'एग्ज़िट' (बाहर आनेका द्वार) की ओर आ खड़ी हुईं। उन युवतियों की बौछार द्वार की ओर धकेल दी जाती थी और वर्षा की बौछारों से युवतियों की बौछार अधिक आकर्षक जान पड़ती थी।

उस समय बुकी के हृदय में उस भागीण युवक के लिए एक अद्भुत वात्सल्य का भाव पैदा हुआ। उसने अपने कमरे के सामने 'हाऊस फुल' का तख्ता लटका दिया और स्वयं खिड़की बंद करते हुए बाहर निकल आई। उस छोकरे के काँपते हुए हाथों में टिकट दे दिया और फिर आप ही उसे कंडक्टर तक ले गई—लगातार काँपते रहने से उस छोकरे के कुरूप रूप में और भी वृद्धि हो गई थी। कंडक्टर ने सावधानी से इस युवक को १६ नम्बर की सीट पर बिठा दिया। बुकी दरवाज़े में खड़ी उस छोकरे और उसकी साथिन की ओर देखती रही। ब्लांड ने घबरा कर अपनी दाईं ओर देखा और मज़बूती से अपनी कुर्सी की सीखों को पकड़ लिया। उस लड़की को अपनी शाम के तबाह हो जाने में कोई सन्देह न रहा। बुकी ने सोचा सम्भवत: वह लड़की भी मेरी तरह प्रेम और सौन्दर्य की अपेक्षा अपनी चवन्नी या दस के नोट को पसन्द करती हो। इसके बाद पर्दे हट गए और सिनेमा शुरू हुआ। अंगरेज़ी फ़िल्म—"मेरा नाम मुझसे पहले सफ़र करता है" शुरू हुई और गाना एक सुमधुर धुनि पर गाया जाने लगा—'तारों भरी रात के नीचे।"

बुकी ने गहरा, ठंडा सांस लिया और अपने मन में ट्यून गुनगुनाने लगी—'तारों भरी रात के नीचे'। लेकिन अभी दूसरे 'शो'

का सान बनाना था और इसे तीन साढ़े तीन रुपये हाथ लग चुके थे। अब तो वह बहुत ही थक गई थी। अपनी आँखों को तीक्ष्ण रोशनी से बचाने के लिए उसे हाल का अँधेरा पसन्द था—वह सोचने लगी, 'तारों भरी रात के नीचे' का मनोरञ्जक गाना सुनकर उस कुरूप युवक को क्या सुन्दर नक्षत्रोंयुक्त आकाश याद आएगा या हाल की छत? या सुन्दर सीटें जहाँ प्रतिदिन नीरस अनुभव होता है। इसके बाद बुक्की बाहर निकल आई। कण्डक्टर जानता था कि बुक्की इसी स्थान पर खड़ी होकर एकाध क्षण के लिए पिक्चर देखा करती है और फिर झट ही विचलित होकर बाहर निकल जाती है, जैसे कि चित्रपट पर कोई बहुत ही भयानक दृश्य दिखाया जा रहा हो—जब कि यह बात न थी। वह शान्ति से एक गाना भी नहीं सुन सकी थी—उसे यों अनुभव होता था मानों उसके हृदय का पात्र छोटा है और सङ्गीत का स्रोत बहुत बड़ा और वह धुन उसके छोटे से हृदय में नहीं समा सकती, वह अपना छलकता हुआ दिल लेकर बाहर निकल आती और तारों भरी रात के नीचे २४ परगना के किसी ग्राम के तालाब का किनारा उसे याद आ जाता, जहाँ उसका प्रेम परवान चढ़ा और लुट गया। जहाँ से गाँव की नारियाँ अपना घड़ा भरकर चली आती थीं। इसी से अधिक स्थान उनके गगरों में न था और उस गगरी के जल से वे खाना बनातीं और चौका भी करतीं थीं। गाय के गोबर को मिट्टी में मिला कर वे चौके को बड़ी सफाई से पोता करतीं और बुक्की का जी भी चाहता था कि इन बड़े-बड़े शानदार होटलों को छोड़ किसी ऐसे अलग कोने में शान्ति और संतोष से पड़ रहे और उन नारियों की तरह चारपाई पर लेट कर रात को तारों से भरे आकाश का तमाशा देखा करे।

वह मैनेजर के कमरे के पास खड़ी होकर सिगरेट सुलगाने लगी। कुछ देर बाद हाल में रोशनी हो गई। हाफ़ टाइम हो चुका था, बुकी ने फिर एक बार पर्दों के पीछे से १६ और उसके साथ की सीट की ओर देखा। वह युवक और युवती एक दूसरे के लिए वैसे ही अजनबी थे और अपनी-अपनी जगह पर सिमट कर बैठे थे। अगर वह छोकरा ढंग से इस मधुर धुन की प्रशंसा कर देता तो कितनी अच्छी बात होती, लेकिन वह तो गुम सुम बैठा था।

अब हाफ़ टाइम में वह कोई बात शुरू कर सकता था, लेकिन वह बाहर चला आया। उसका चेहरा बहुत उतरा हुआ था। वह बार बार आँखें झपकाता था और अपने अधरों पर व्यग्रता से ज़बान फेरता और इन सब हरकतों चेष्टाओं से वह बिल्कुल उजड्ड ग्रामीण प्रतीत होता था।

"हलो मिस – ममि"-उसने बाहर निकल कर डरते हुए कहा।

बुकी ने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा और बोली—'हलो··· एञ्जायड आलराइट—(कहो खूब आनन्द रहा), उस लड़के ने टूटी फूटी अँगरेज़ी में जवाब दिया "ममि, मैं तो कलकत्ता देखना चाहता हूँ और और···उसके बाद वह हकलाने लगा– मेरा चाचा केदारपुर में दुकान करता है··· ।"

बुकी का जी चाहा कि सत्य कह दे कि कलकत्ता बिल्कुल इस हाल की छत सा है। लेकिन उस युवक ने छत को ध्यानपूर्वक देखा भी न था और बुक्की भी क्षण भर में परेशान और उदास हो गई। उसके सिर में अधिक दर्द होने लगा। वह इस ग्रामीण युवक को पसन्द करने लगी थी। वह बहुत ही करुणा-हृदया थी। इसके पश्चात् जब शो समाप्त हुआ तो बुक्की ने मैनेजर से छुट्टी ले ली।

उस समय वह ग्रामीण कुरूप युवक बाहर आया। युवकी उसके निकट चली गई—बोली……

'हलो बॉय—तुम कहाँ का रहने वाला है?"

"हर्षपुर २४ परगना का।"

"मैं जानती हूँ हर्षपुर—मै एक बार मि० रे के यहाँ एक मास ठहरी थी।"

"रे—हाँ हाँ" युवक का चेहरा चमक उठा, "मैं रे को जानता हूँ—वह हमें पढ़ाते रहे हैं।"

तदनन्तर कुछ देर तक खामोशी रही फिर वह लड़का बोला—"आप कितनी कृपालु हैं—क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ?"

"नलिनी, युवकी बोली—"लेकिन यहाँ सब लोग मुझे मार्गरेट कहते हैं—मि० रे का बड़ा भाई मेरा बाप था—उसे मरे हुए १० वर्ष हो चुके हैं। उन्होंने एक एँग्लो इण्डियन लड़की से विवाह किया। वह लड़की मेरी माँ है ……और क्या तुम कलकत्ता देखना चाहता है?"

छोकरे ने सिर हिला दिया। मार्गरेट बोली, "चलो हम काफ़ी की एक प्याली पिएँगे।" और वे दोनों 'फुलो' की ओर चल दिए। होटल के दरवाज़े पर दो बड़े-बड़े दूधिया बल्ब दूर से चाँद जैसे प्रतीत होते थे। मार्गरेट ने उनकी ओर इङ्गित करते हुए कहा—दूर से असली चाँद का धोका होता है।" युवक ने झट हां में हां मिला दी। मार्गरेट उन बल्बों की ओर इशारा करके कहना चाहती थी बस कलकत्ता ऐसा ही है।

फिर वे होटल में गए और काफ़ी पीने लगे। उस युवक के चेहरे से स्पष्ट प्रतीत होता था कि उसे काफ़ी का तिक्त स्वाद रुचिकर

नहीं। वह गँवार शायद दूध के मटके चढ़ा जाता था। काफ़ी के बाद मार्गरेट ने कई चीज़ों का आर्डर दिया। लड़के को इनमें से कई चीज़ों के नाम न आते थे। मार्गरेट पूछती—

"यह क्या है ?"

"नहीं मालूम।"

"सॉसेज, कहो सॉसेज।"

"सासेज।"

"यह क्या है ?"

"नहीं मालूम।"

"कटलेस कहो कटलेस।"

"कटलेस।"

कभी वह युवक भोलेपन में कुछ और कह देता तो मार्गरेट उसे शुद्ध कर देती मानों बचपन में माँ बच्चे को नये नाम लेना सिखाती है। और जब वह उलटा-सीधा नाम लेता है तो उसे शुद्ध कर देती है, काफ़ी पीने और कुछ खा चुकने पर मार्गरेट ने पैसे निकालने के लिए जेब में हाथ डाला तो उस लड़के ने थाम लिया और अपनी जेब से पैसे निकाल कर बिल पर रख दिए। मार्गरेट का ख्याल था कि कलकत्ते में औरत का बिल चुकाने का व्यवहार इस युवक को न आता होगा। लेकिन उसने देखा कि वह इस बात से तो परिचित था ऐसे ही जैसे सिनेमा में चवन्नी अधिक देकर किसी युवती के साथ सीट बुक करवा लेने का ढंग उसे किसी ने बता दिया था। इसी प्रकार औरत के साथ काफ़ी पीकर या खाना खाकर उसके पैसे चुका देने का व्यवहार भी किसी ने सिखा दिया होगा।

मार्गरेट ने बताया—कलकत्ता बहुत सभ्य हो चुका है और

सभ्यता भी अंगूर के दानों की तरह है—जब यह बहुत पक जाती है तो इसमें मदिरा की गंध आने लगती है और जब मार्गरेट को पता चला कि वह युवक औरत के सम्बन्ध में बिल्कुल कुछ नहीं जानता तो उसने युवक का हाथ पकड़ते हुए कहा—

"बॉय, क्या तुम आज रात्रि को मेरे अतिथि बनोगे?......मैं आज अपनी माँ के पास नहीं जाऊँगी, यहाँ घर से अलग मेरे पास एक बहुत अच्छा फ़्लैट है......। मैं तुम्हें बता दूँगी औरत क्या चीज़ है, लेकिन वह औरत जिसने तुम्हें सिनेमा के द्वार पर पाया था जिसे तुमने २४ परगना में देखा, यहाँ तुम उसे नहीं पा सकोगे हाँ तुम उस औरत को देख लोगे वह 'औरत' जो कलकत्ता है।"

रहमान के जूते

दिन भर काम करने के अनन्तर जब रहमान घर पहुँचा तो भूख उसे बहुत सता रही थी। 'जैना की माँ, जैना की माँ' उसने चिल्लाते हुए कहा—"खाना निकाल दे बस झट से।" बुढ़िया उस समय अपने हाथ कपड़ों-लत्तों में गीले किये बैठी थी और इससे पहिले कि वह अपने हाथ पोंछ ले रहमान ने एकदम अपने जूते खाट के नीचे उतार दिए और खद्दर के मुलतानी तहमद को घुटनों में दबा खाट पर चौकड़ी जमाते हुए बोला—'बिस्मिल्लाह।'

वृद्धावस्था में भूख जवान हो जाती है—रहमान का बिस्मिल्लाह बुढ़ापे और जवानी की इस दौड़ में रकाबी से पहले और बहुत दूर निकल गया था और अभी तक बुढ़िया ने सज्जी और नील में भिगोए हुए हाथ दुपट्टे से नहीं पोंछे थे—जैना की माँ बराबर चालीस वर्ष से अपने हाथ दुपट्टे से पोंछती आई थी और रहमान लगभग इतने ही समय से क्रुद्ध होता आया था लेकिन आज एकाएक वह स्वयं समय बचानेवाले इस स्वभाव को सराहने लगा था। रहमान बोला, 'जैना की माँ, जल्दी ज़रा" ...और वृद्धा अपने चालीस वर्षीय पुराने हाव-भाव से बोली—"आय हाय, ज़रा दम तो ले बाबा तू।"

संयोगवश रहमान की दृष्टि अपने जूतों पर जा अटकी जो उसने जल्दी से खाट के नीचे उतार दिए थे—रहमान का एक जूता

दूसरे जूते पर चढ़ गया था—वह निकट भविष्य में किसी यात्रा पर जाने का अनुमान था—रहमान ने हँसते हुए कहा।

"आज फिर मेरा जूता जूते पर चढ़ रहा है, जैना की माँ, अल्लाह जाने मुझे कौन से सफ़र पर जाना पड़े !"

"जैना को मिलने जाना है और कहाँ जाना है ?" वृद्धा बोली ! "यूँ ही तो नहीं तेरे गूदड़ धो रही हूँ बुड्ढे ! दो पैसे हब्बल का तो नील ही लग गया है तेरे कपड़न कूं—क्या दो पैसे रोज़ की कमाई भी करे है ?"

'हाँ हाँ' वृद्ध रहमान ने सिर हिलाते हुए कहा, "कल मुझे अपनी एकलौती बच्ची से मिलने अम्बाला जाना है, तभी तो यह जूता जूते से न्यारा नहीं होता।" गत वर्ष भी जब यह जूता जूते पर चढ़ गया था तो रहमान को पर्ची डालने के लिए ज़िला कचहरी जाना पड़ा था—उसके मस्तिष्क में उस वर्ष की यात्रा और जूतों की करतूत अच्छी तरह से सुरक्षित थी—ज़िले से वापिसी पर उसे पैदल ही आना पड़ा था, क्योंकि भावी सदस्य ने वापिसी पर उसका किराया भी नहीं दिया था इसमें सदस्य का दोष नहीं था—परन्तु जब रहमान पर्ची पर नीली चर्खी का चिन्ह लगाने लगा था तो उसके हाथ काँप रहे थे और उसने घबरा कर पर्ची किसी दूसरे सदस्य के पक्ष में डाल दी थी।

जैना को मिले दो वर्ष होने को आए थे। जैना अम्बाले में ब्याही हुई थी। इन दो वर्षों के अन्तिम कुछ महीने रहमान ने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किये थे—उसे यही अनुभव होता था, जैसे कोई दहकता हुआ उपला उसके हृदय पर रखा हुआ है। जब उसे जैना को मिलने का ख्याल आता तो उसे कुछ चैन कुछ शांति प्राप्त होती। जब मिलने का ख्याल ही इतना सन्तोष-जनक था तो मिलना कैसा

होगा ? वृद्ध रहमान बड़े आश्चर्य में सोचता था वह अपनी लाड़ली बेटी को मिलेगा और फिर तिलंगों के सरदार अली मुहम्मद को। पहले तो वह रो देगा—फिर हँस देगा, फिर रो देगा और अपने नन्हे नाती को लेकर गलियों-बाज़ारों में खेलता फिरेगा···"यह तो मैं भूल ही गया था—जैना की मां !" रहमान ने खाट की एक खुली हुई रस्सी को नित्य के अभ्यासानुसार घिस कर काटते हुए कहा, "बुढ़ापे में याददाश (स्मरण-शक्ति) कितनी कमज़ोर हो जाती है।"

अली मुहम्मद जैना का पति एक हृष्ट-पुष्ट युवक था—सिपाही से उन्नति करते करते वह नायक बन गया। तिलंगे उसे अपना सरदार कहते थे। शान्ति के दिनों में अली मुहम्मद बड़े उत्साह से हॉकी खेला करता था। 'एन. डब्ल्यू. आर., पौलीस मैन, ब्रिगेड वाले, यूनिवर्सिटी वाले, उसने सब हरा दिए थे। अब तो वह अपनी एम. टी. के साथ बसरे जाने वाला था—क्योंकि ईराक़ में रशीद-अली बहुत ताक़त पकड़ चुका था ···इस हॉकी के कारण ही अली मुहम्मद कम्पनी कमांडर की दृष्टि में ऊँचा उठ गया था। नायक बनने से पहले वह जैना से बहुत अच्छा व्यवहार करता था, तदुपरान्त वह अपनी ही दृष्टि में इतना ऊँचा हो गया था कि जैना उसे पाँव तले नज़र न आती थी। इसका एक अन्य कारण भी था—कम्पनी कमांडर की पत्नी श्रीमती हैलट ने पारितोषक वितरण के अवसर पर अंगरेज़ी में कुछ कहा था जिसका अनुवाद सूबेदार ने किया था—"मैं चाहती हूँ तुम्हारी स्टिक चूम लूँ।" अली मुहम्मद का विचार था—शब्द स्टिक नहीं होगा कुछ और होगा बड़ा द्वेषी है सूबेदार। अंगरेज़ी भी तो बस गुहाने तक ही जानता है।

रहमान को यूँ अनुभव होने लगा जैसे अपने दामाद से नहीं

बल्कि किसी बड़े अफ़सर से मिलने जाना है। उसने खाट पर से झुक कर जूते पर से जूना उतार दिया जैसे वह अम्बाले जाने से घबराता हो, इतने समय में जैना की माँ खाना ले आई। आज उसने विशेषतया मांस पका रखा था। जैना की माँ ने मांस बड़ी कठिनाई से नगर से मँगवाया था और उसमें घी अच्छी तरह से छोड़ा था—छै मास पूर्व रहमान को तिल्ली की सख्त शिकायत थी, अतः वह समस्त गरिष्ट पदार्थों गुड़, तेल, बैंगन, मसूर की दाल, मांस इत्यादि से परहेज़ करता था। इस छै मास में रहमान ने सेर के लगभग नौशादर छाछ के साथ घोलकर पी लिया था, तब कहीं उसके स्वास का कष्ट दूर हुआ था—भूख लगने के अतिरिक्त उसके मूत्र की स्याही सफ़ेदी में बदली थी लेकिन उसकी गर्दन वैसे ही पतली थी—आँखों में गँदलापन वैसा ही स्पष्ट था, पलकों पर की भुरभुराहट भी स्थिर थी और त्वचा का वर्ण श्यामल था। मांस देखकर रहमान क्रुद्ध हो गया और बोला—"चार पाँच रोज़ हुए तूने बैंगन पकाए थे, तब मैं चुप रहा, परसों मसूर की दाल पकाई, जब भी चुप रहा, तू तो बस चाहती है मैं बोलूँ ही नहीं—मरी मिट्टी का हो रहूँ। सच कहता हूँ तू मुझे मारने पर उतारू है जैना की माँ!"

वृद्धा, पहले दिन से ही जब उसने बैंगन पकाए थे, रहमान की ओर से विरोध की सम्भावना रखती थी, लेकिन रहमान की खामोशी से बुढ़िया ने उलटा ही अर्थ ले लिया। वस्तुतः बुढ़िया ने एक निखट्टू पुरुष के लिए अपना स्वाद भी त्याग दिया था। उसका विचार करने का ढब भी न्यारा था। जब से वह पेट बढ़े हुए बस ढांचे के साथ परिणीत हुई थी उसने सुख ही क्या पाया था। भला चङ्गा रहमान लुधियाने में सिपाही था। एक तरबूज़ पर से फिसलकर

घुटना तोड़ बैठने से उसने पेन्शन लेली थी और घर में बैठ रहा था। वृद्धा ने वस्त्र छाँटते हुए कहा 'तु न खा बाबा—तेरी खातिर मैं तो मरूँ—मुझे तो रोज दाल, रोज दाल में कुछ मजा न दिखे ?"

रहमान का जी चाहता था कि वह खाट के नीचे से जूता उठा ले और इस वृद्धा की चाँद पर से रहे सहे बालों का भी सफाया कर दे। सिर की पशम उतरने से बुढ़िया का स्थायी रोग भी दूर हो जायगा, परन्तु कुछ ही ग्रास मुख में डालने के फ़ौरन बाद ही उसे ख्याल आया—"तिली होती है तो होती रहे, कितना ज़ायकेदार गोश्त पकाया है जैना की मां ने—मैं तो नाशुकरा हूँ पूरा पूरा" और चटखारे ले लेकर तरकारी खाने लगा। सालन से तर हुआ ग्रास जब उसके मुख में जाता तो उसे विचार आता, 'आखिर उसने जैना की मां को कौन सा सुख दिया है ? वह चाहता था अब तहसील में चपड़ासी हो जाए और फिर उसके पुराने दिन लौट आएँ।

खाने के बाद रहमान ने अपनी उँगलियाँ पगड़ी के शमले से पोंछी और उठ खड़ा हुआ। किसी अर्ध जाग्रत से भाव से उसने अपने जूते उठाए और उन्हें दालान में एक दूसरे से अच्छी तरह अलग करके रख दिया।

परन्तु इस यात्रा से छुटकारा नहीं था—कुछ भी हो उसकी सप्ताह भर की मक्की की फ़सल में नलाई आवश्यक थी। प्रातः दालान में झाडू देते हुए वृद्धा ने अव्यवस्थित ढङ्ग से रहमान के जूते हिला दिये और जूते की एड़ी दूसरी एड़ी पर चढ़ गई ! सन्ध्या के निकट मनोभाव अवनत हो जाते हैं। सोने से पहले अम्बाले जाने का विचार रहमान के हृदय में कच्चा पक्का था। उसका विचार

था कि नलाई कर चुकने के पश्चात् ही वह कहीं जायगा तथा कल के गरिष्ठ भोजन से उसके पेट में फिर कोई दोष उत्पन्न हो गया था। परन्तु प्रातः जब उसने फिर जूतों की वही दशा देखी तो उसने सोचा, "अम्बाले गये बिना छुटकारा नहीं है—मैं लाख इन्कार करूँ लेकिन मेरा दाना पानी! मेरे जूते बड़े प्रवीण हैं। वे मुझे सफ़र पर ले जाने के लिए बाधित करते हैं।" उस समय प्रातः सात बजे थे। और प्रातःकाल के भाव उच्च होते हैं—रहमान ने फिर अपना जूता सीधा किया और अपने कपड़ों की देख-भाल करने लगा।

नील में धुले हुए कपड़े सूखकर रात ही रात में कैसे उजले हो गए थे। नीलेपन ने अपने आपको खोकर सफ़ेदी को कितना उभार दिया था? जब कभी वृद्धा नील के बिना वस्त्र धोती थी तो यूँ ही दिखाई देता था जैसे अभी इन्हें जोहड़ के पानी मे निकाला गया हो और जल की मटियाली रङ्गत उनमें यूँ बस गई हो मानों पागल के मस्तिष्क में वहम बस जाता है।

जैना की माँ ओखली में लगातार दो तीन दिन से जौ कूट कर तन्दुल बना रही थी—घर में बहुत समय से पुराना गुड़ पड़ा था जिसे धूप में रख कर कीड़े निकाल दिए गए थे। इसके अतिरिक्त सूखी मक्की के भुट्टे थे, गोया जैना की मां बहुत दिनों से इस यात्रा की तैयारी कर रही थी। और जूते का जूते पर चढ़ना तो केवल उसका अनुमोदन ही था। वृद्धा का विचार था कि इन तन्दुलों में से रहमान के रास्ते का काम भी हो जायगा और बेटी के लिए सौग़ात भी।

रहमान को कोई ख्याल आया—बोला—"जैना की मां—भला क्या नाम रखा है उन्होंने अपने नन्हें का?

बुढ़िया हँसते हुए बोली—"साहक़ (इसहाक़) रक्खा है नाम। और क्या रखा है नाम उन्होंने अपने नन्हे का। वाह सचमुच

कितनी कमज़ोर है तेरी याद्दाश।"

इसहाक़ का नाम भला रहमान कैसे याद रख सकता था। जब वह खुद भी नन्हा था तो उसके दादा को भी रहमान का नाम भूल गया था। दादा खाता पीता आदमी था, उसने चाँदी की एक तख्ती पर अरबी अक्षरों में लिखवा कर इसे अपने पोते के गले में डाल दिया था। लेकिन पढ़ना किसे आता था—बस वह तख्ती को देख कर हँस दिया करता था। उन दिनों तो नाम गामू, शेरा, फत्तू, फज्जा इत्यादि ही होते थे। इसहाक़, शुऐब आदि नाम तो अब नागरिकों ने रखने शुरू कर दिए थे। रहमान सोचने लगा—साहक़ अब तो डेढ़ बरस का हो चुका होगा। अब उसका सिर भी नहीं भूलता होगा—वह गर्दन उठाकर मेरी तरफ टुक-टुक देखता जायगा और अपने नन्हे से दिल में सोचेगा, 'अल्लाह जान यह बाबा चिट्टे बालों वाला बूढा हमारे यहाँ कहाँ से आ टपका।' वह नहीं जानेगा कि उसका अपना बाबा है, अपना नाना—जिसके रुधिर और मांस से वह खुद बना है। वह चुपके से अपना मुँह जैना की गोद में छिपा लेगा। मेरा जी चाहेगा जैना को भी अपनी गोदी में उठा लूँ, लेकिन जवान बेटियों को कौन गोद में उठाता है—नाहक़ इतनी बड़ी हो गई। जैना बचपन में जब खेल कूदकर बाहर से आती थी तो उसे सीने से लगा लेने से कितनी ठंडक पड़ जाती थी। उन दिनों यह दिल पर सुलगता हुआ उपला रखा नहीं अनुभव होता था······अब वह उसे दूर से ही देख सकेगा—उसका सिर प्यार से चूम लेगा······और क्या वही तृप्ति प्राप्त होगी ?

रहमान को इस बात का विश्वास था कि वह इन सब को देख बरबस रो देगा। वह आँसू थामने का लाख यत्न करेगा लेकिन वे स्वतः चले आएँगे—वे इस लिए नहीं बहेंगे कि तिलंगा बेटी को

पीटता है अपितु मुख की लम्बी कथाओं के स्थान पर आँखें इस बात को प्रगट कर देंगी—"जैना, मेरी बेटी तेरे पीछे बहुत कड़े दिन देखे हैं—जब चौधरी खुशहाल ने मुझे मारा था तो उस वक्त मेरी कमर बिलकुल टूट गई थी। मैं मर ही तो चला था फिर कैसे देखती अपने अब्बा को! लेकिन बिन आई कोई नहीं मरता। शायद मैं तुम्हारे साहक के या किसी और नेकबख्त के पाँव को ख़ैरात से बच रहा।

और क्या नन्हें का लहू जोश मारने से रह जाएगा? वह हुक्म कर चला आएगा मेरे पास और मैं कहूँगा, 'साहक बेटा देख मैं तेरे लिए क्या लाया हूँ। हाँ, गाँव के लोगों का यही गरीबी का दावा होता है। नन्हा मुश्किल से दाँतों से पपोल सकेगा किसी हरे भुट्टे को और जब तिलंगे से मेरी तू तू मैं मैं होगी तो मैं उसे खूब खरी खरी सुनाऊँगा। बड़ा समझता है अपने आप को—कल की गिलहरी और······और ··वह नाराज़ हो जाएगा, कहेगा घर रखो अपनी बेटी को ·····फिर मैं उसके बेटे को उठाये फिरूँगा—गली, गली, बाज़ार, बाज़ार, ·····और मन जाएगा तिलंगा।

रहमान ने नलाई का प्रबन्ध किया—खड़ी खेती पर कुछ रुपए उधार लिए, सौग़ात बाँधी—मार्ग-भोजन भी लिया और इक्के पर पाँव रख दिया। वृद्धा ने उसे अल्लाह के हवाले करते हुए कहा—बसरे चला जायगा अलिया कुछ दिनों में—मेरी जैना को साथ ही लेते आना और मेरे साहक़ को, कौन जाने कब दम निकल जाए!

मलका रानी से मागाकपुर पहुँचते पहुँचते रहमान ने उसके साहक़ के लिए बहुत सी चीज़ें ख़रीद लीं। एक छोटा सा शीशा था, एक सिलोलाइड का जापानी झुनझुना, जिसमें आधी दर्जन के लगभग

घुँगरू एकदम बज उठते थे। मानकपुर से रहमान ने एक छोटा सा गडीरा भी खरीदा। इसहाक़ उसे पकड़ कर चलना सीख जाए—कभी रहमान कहता, अल्लाह करे इसहाक़ के दाँत इस योग्य हों कि भुट्टे खा सके। फिर एकदम उसकी इच्छा होती कि वह इतना छोटा हो कि चलना भी न सीखा हो, और जैना की पड़ोसिनें जैना को कहें—नन्हें ने तो अपने नाना के गडीरे पर चलना सीखा है और रहमान नहीं जानता था कि वह नन्हें को बड़ा देखना चाहता है या बड़े को नन्हा, केवल उसकी इच्छा थी कि उसके तंदुल, उसके भुट्टे, उसका शीशा, उसका जापानी झुनझुना और शेष खरीदी हुई सब चीज़ें सफल हों —उन्हें वही स्वीकृति प्राप्त हो जिस के लिए उसे आशा हो रही है। कभी वह सोचता क्या जैना गाँव के गँवार लोगों के इन उपहारों को पसंद करेगी ? संभव है वह केवल उसका मन रखने के लिए इन चीज़ों को पाकर प्रसन्न हो जाए; लेकिन क्या वह मेरा जी रखने के लिए ही ऐसा करेगी ? फिर तो मुझे बहुत दुःख होगा। क्या मेरे तन्दुल सचमुच पसंद नहीं आ सकते मेरी बेटी को, मेरी अपनी जैना को ? अली का तो पराया पेट है, वह तो कुछ भी नहीं पसंद करने का। वह तो नायक है। अल्लाह जाने साहब लोगों के साथ क्या कुछ खाता होगा। वह क्यों पसंद करने लगा गाँव के तन्दुल ? माणाकपुर से चलते समय रहमान काँपने लगा।

रहमान पर शारीरिक और मानसिक थकावट के कारण तन्द्रा सी छाने लगी, रात के मांस ने उसके पेट का शैतान जगा दिया था। आँखों में गैस्लाइट और गीजड़ तो थी ही, अतः कुछ यात्रा, कुछ गरिष्ट भोजन के कारण आँखों से ज्वाला निकलने लगी। रहमान ने पेट को दबाया। तिली वाले स्थान पर ठुस सी प्रतीत

होती थी—जैना की माँ ने व्यर्थ ही मांस पकाया—लेकिन उस समय तो उसे दुपट्टे से हाथ पोंछना और मांस दोनों चीज़ें पसन्द आई थीं।

रहमान को एक जगह पेशाब की हाजत हुई और उसने देखा कि उसका मूत्र गँदला था। रहमान को भ्रम हो गया, तो भी उसने सोचा 'मुझे परहेज़ करना चाहिए, पुराना रोग फिर जाग्रत हो गया है।'

गाड़ी में उत्तरीय वायु फ़र्राटे भरती हुई अन्दर प्रवेश कर रही थी—वृक्षों के दृष्टि के सामने घूमने, कभी आँखें बन्द करने और खोलने से रहमान को गाड़ी बिल्कुल एक पिंगूड़े की तरह आगे पीछे जाती हुई प्रतीत होती थी। दो तीन स्टेशन मानों एक ऊँघ में निकल गए और जब वह करनाल से एक दो स्टेशन परे ही था तो उसकी आँखें खुल गईं। उसकी सीट के नीचे से गठड़ी उठा ली गई थी, और केवल उसके अपने गुज़ारे के लिए तन्दुल और चादर के पल्ले में बँधे हुए मक्की के भुट्टे रह गये थे या उसके फैले हुए पाँवों में गडीरा खड़ा था।

रहमान शोर मचाने लगा। इस डब्बे में एक दो अच्छी वेष-भूषा के आदमी समाचार-पत्र पढ़ रहे थे—वृद्ध को इस प्रकार आग-बबूला होते देख कर चिल्लाए, 'मत शोर मचाओ, ए बुड्ढे, मत शोर करो'' लेकिन रहमान बोलता चला गया, उसके सामने बटी हुई मूँछों वाला कान्स्टेबल बैठा था, रहमान ने उसे पकड़ लिया और बोला 'तूने ही मेरी गठड़ी उठवाई है, बेटा!.........''

कान्स्टेबल ने एक झटके से रहमान को परे फेंक दिया—उस खींचा-तानी में रहमान का दम फूल गया, बाबू फिर बोले, "तु सो

फ्यों गया बाबा ? तू सँभाल कर रखता अपनी गठड़ी को। तेरी अकल चरने गई थी बाबा ......।"

रहमान उस समय सारी दुनिया से लड़ने को तैयार था। उसने कान्स्टेबल की वर्दी फाड़ डाली। कान्स्टेबल ने गडीरे का लट्ठा खेंचकर रहमान को मारा—इसी अवसर पर टिकट-चैकर ने प्रवेश किया—उसने भी अच्छे वेषधारी लोगों की राय का पल्ला देख कर रहमान को गालियाँ देनी शुरू कीं और रहमान को आज्ञा दी कि वह करनाल पहुँच कर गाड़ी से उतर जाय—उसे रेलवे पुलीस के हवाले किया जायगा। चैकर के साथ लड़ाई में एक लात रहमान के पेट में लगी और वह फ़र्श पर लेट गया।

करनाल आ चुका था, उसकी चादर और गडीरा प्लैटफ़ार्म पर उतार दिए गए, गडीरे का लट्ठा रुधिर में भीगा हुआ एक ओर पड़ा था और मक्की के भुट्टे खुली हुई चादर से निकल कर फर्श पर लुढ़क रहे थे।

रहमान के पेट में बहुत चोट लगी थी—उसे स्ट्रेचर पर डाल करनाल के रेलवे हस्पताल में ले जाया गया।

जैना, साहक़ा, अली मुहम्मद, जैना की माँ......एक एक कर रहमान की नज़रों के सामने से गुज़रने लगे। जीवन की फ़िल्म कितनी छोटी होती है, इसमें कठिनाई से तीन चार पुरुष और एक दो स्त्रियाँ ही आ सकती हैं। लेकिन इनमें से कुछ भी तो याद नहीं रहता—जैना, साहक़ा, अली मुहम्मद और जैना की माँ......'या कभी कभी इन्हीं में से कुछ लोगों के लिए किए गए प्रयत्न सम्बन्धी कुछ घटनाएँ मस्तिष्क में जाग्रत हो जाती हैं, जैसे गडीरा प्लेटफ़ार्म पर पड़ा हुआ हो और मक्की के लुढ़कते हुए भुट्टे जिन्हें खलासियों,

वाचमैनों, सिगनल वालों के आवारा छोकरे उठा उठा कर भाग रहे हों और उनके काले काले चेहरों में सफेद दाँत बिल्कुल इसी प्रकार दिखाई दें जैसे इस अँधेरे से दृश्य में उनकी हँसी उनके क़हक़हे ·· या दूर कोई पुलीसमैन अपनी डायरी में कुछ आवश्यक और अनावश्यक विवरण लिख रहा हो—

फिर लात मारी·······

ऐं यह नहीं हो सकता···अच्छा फिर लात मारी और फिर—फिर हस्पताल के सफेद बिस्तरे, कफ़न की तरह मुँह खोले हुए चादरें, क़बरों की सी चारपाइयाँ, ईज़राईल-रूपी नर्सें और डाक्टर········

रहमान ने देखा उसके तन्दुलों वाली चादर हस्पताल में उसके सिरहाने पड़ी थी—यह भी वहीं छोड़ आए होते, रहमान ने कहा, इसकी मुझे क्या ज़रूरत है ? इसके अतिरिक्त रहमान के पास कुछ भी न था। 'डाक्टर और नर्स उसके सिरहाने खड़े प्रतिक्षण लट्ठे की श्वेत चादर को मुँह की ओर खिसका देते थे।·····

रहमान को क़य (वमन) की हाजत महसूस हुई, नर्स ने झट एक चिलमची बेड के नीचे सरका दी। रहमान क़य करने के लिए झुका और उसने देखा कि उसने अपने जूते उसी प्रकार जल्दी से चारपाई के नीचे उतार दिए थे और जूते पर जूता चढ़ गया था। रहमान एक मैली सी, सुकड़ी हुई हँसी हँसा और बोला—"डाकदर जी ! मुझे सफ़र पर जाना है। आप देखते हैं मेरा जूता जूते पर कैसा चढ़ रहा है ?"

डाक्टर उत्तर में मुस्करा दिया और बोला, "हाँ बाबा, तुझे बड़े लम्बे सफ़र पर जाना है, बाबा। फिर रहमान के सिरहाने की

चादर टटोलते हुए बोला—लेकिन तेरा रास्ते का खर्च कितना थोड़ा है बाबा—यही केवल तन्दुल और इतनी लम्बी यात्रा ......"

बस ज़ैना, ज़ैना की माँ, साहक़ा और अली मुहम्मद या वह शोकप्रद घटना ....

रहमान ने मार्ग के भोजन पर हाथ रख दिया और बड़ी लम्बी यात्रा के लिए चल दिया।

हड्डियाँ और फूल

आठ नौ महीने के निरन्तर प्रयोग से मेरे बूटों के तले घिस गए थे और इनमें दो एक ऐसे छोटे-छोटे छेद उत्पन्न हो गए जिनमें से कीचड़ प्रवेश करके उन्हें गीला करने के अतिरिक्त मेरे स्वभाव की विलासिता की प्रमाण रेशमी जुराबों को खराब कर दिया करता। एक विशेष प्रकार की लचलचाहट की दशा में मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ अपने पाँव और उनमें लिथड़े हुए कीचड़ में सिमट आतीं, मेरे मस्तिष्क में कोई सूक्ष्म विचार स्थान ही न पा सकता जैसे मेरा मस्तिष्क एक अलंघ्य दलदल बन गया हो।

उस समय मैं डरता-डरता मल्लम के पास गया, मल्लम जैसा कि मैं उसे एक पड़ौसी के तौर पर जानता था एकान्त-प्रिय गुसैल मोची था। वह कई बार अपनी पत्नी को पीटा करता, संभवतः इसीलिए वह बीमार होकर बच्चों सहित मायके भाग गई थी और वहाँ से उसने आज तक पहुँच का पत्र भी न भेजा था ....—
मल्लम की एक छोटी सी फैक्टरी थी, जिसमें दो तीन कारीगर, एक मिट्टी के तेल के पुराने लैम्प के नीचे पतंगों और परवानों की वर्षा होने पर भी, बहुत रात गई तक बैठे काम किया करते थे और मुझे अपने चौबारे पर से फैक्टरी के टूटे हुए रोशनदानों में से नज़र आया करते थे।

मल्लम के अतिरिक्त इस काली बाड़ी में कोई और मोची था भी नहीं और मल्लम भी साधारण मोचियों की तरह काली बाड़ी में से गुज़रने वाले हर राही के पाँव की ओर देखा करता और उठ

की पालिश के हिसाब से बूट वाले की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाता जब कि वह साधारण मोचियों की तरह नासमझ आदमी न था और जहाँ तक मुझे ज्ञात है वह कुछ लिख-पढ़ भी लेता था. इसके अतिरिक्त उसे भी बूट हाथ में लेते ही बीस के लगभग मरम्मत योग्य स्थानों की ओर इशारा करने की आदत थी—यहाँ सिलाई होगी, यहाँ भी सिलाई होगी, इस जगह स्टार लगेंगे और यह सब कुछ हो चुकने के बाद एड़ियों में लप्पा लगेगा और इस लप्पे के शब्द से मुझे बहुत चिढ़ थी।

काली बाड़ी के बाज़ार में डोंगर मुहल्ला के सब कुत्ते एकत्रित हो कर एक दूसरे की दुम सूँघ रहे थे और मल्लम अपनी आर को एक खुर्दरे, कच्चे चमड़े में दिए बड़ी दिलचस्पी से इन आवारा कुत्तों की तरफ़ देख रहा था—मैंने उससे एक भेद भरे ढंग से केवल इसलिए बात की कि शायद वह इस तरह मज़दूरी कम माँगेगा और क्या मालूम जो वह लप्पे की बात ही न करे।

"इन कुत्तों के मेल-मिलाप का ढंग भी अद्भुत है" मैंने आवश्यकता से अधिक हँसते हुए कहा। मल्लम ने भी अपने दाँत दिखा दिए और मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखने लगा जैसे वह व्यापार के सम्बन्ध में मुझसे उच्चतर है और मेरी इस चेष्टा को भली प्रकार पहचानता है। कुछ देर बाद वह सन्दूकची में से कील, सुतली और मोम ढूँढने लगा, उस समय दोपहर की वेला थी और कारीगर रोटी खाने के लिए कहीं गए हुये थे। पुराने और नए चमड़े के सैकड़ों टुकड़े इधर उधर बिखरे पड़े थे। मल्लम ने आर उठाई उसे पत्थर पर रगड़ा और मेरे बूटों की सिलाई शुरू कर दी।

मल्लम की चुप्पी के कारण मैं वार्तालाप के क्रम को बढ़ा न

सका। कुछ देर बाद अपनी रुईदार बंडी के सूती बटन बन्द करते हुए आप ही बोला—

'इन कुत्तों को देखकर मुझे अपने घर की बात याद आ गई, बाबू जी।'

मैं उत्सुकता के कारण मल्लम की भागी हुई पत्नी के सम्बन्ध में बात-चीत करना चाहता था, लेकिन जब मल्लम ने ही वह कड़ी छेड़ दी तो मैंने साधारणतया उसकी ओर देखते हुए कहा—

कुत्तों से ?—घर की बात।

मल्लम कुछ झेंप सा गया और दूसरे बूट के लिए तला ढूँढ़ने को सन्दूकचा पर आवश्यक से अधिक झुक गया, मैंने यह प्रगट किया जैसे मैं इसकी बात बहुत लगाव से नहीं सुन रहा क्योंकि मेरा विचार था कि इस दशा में वह क्रोधी मोची अपने मन की बात कह देगा। अतः उसने सुतली पर मोम रगड़ने के पहले सावधानी से एक बार मेरी ओर देखा और मुझे अपनी दियासलाई और सिगरेट में अर्ध-मग्न सा जान कर बोला—

"इन कुत्तों को देख कर गौरी ने ऐसी बात की जो इन दिनों मुझे बहुत सताती है। मैं उससे प्रायः जला-कटा ही रहता था, उसे ज़रा ज़रा सी बात पर पीटा करता और कहता 'हड्डियाँ तोड़ दूँगा तेरी, जब कि वह हड्डियों का ढाँचा ही तो रह गई थी वह, और उसके मुख पर सरसों की सी ज़रदी छाई हुई थी। उस दिन भी डोंगर मुहल्ले के सब कुत्ते काली वाड़ीके इस बाज़ारमें चले आए थे और एक बड़ा सा कुत्ता एक खुजली मारी कुतिया के सामने अपनी दुम हिला रहा था जैसे बड़ा प्यार जता रहा हो और गौरी तो जैसे काग-भाषा ही समझती थी, वह यहाँ इसी जगह इसी दहलीज़,

इसी दरवाज़े का सहारा लिए खड़ी मुस्कराती रही फिर सामने कुत्तों की ओर इशारा करते हुए बोली—

"देखो तो वह कैसे दुम हिला रहा है।"

इसका मतलब यह था कि एक हृष्ट-पुष्ट कुत्ता भी कुतिया के कुरूप हो जाने पर उससे प्रेम निबाहे जाता है, तो क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकते? तुम भी तो एक शराबी और कुरूप आदमी हो। रोग तो जी के साथ लगा ही हुआ है और पहले में कितनी नीरोग रहा करती थी।

तदनन्तर वह कुत्ता गुर्राने लगा और अपने अगले पंजों से मिट्टी कुरेद पीछे की ओर फेंकने लगा जैसे वह अपने विपक्षियों को मुक़ाबिले के लिए उकसाता था। लेकिन मैंने गोरी से कहा, "देखो तो वह कितनी घृणा का प्रदर्शन कर रहा है—उसे भी यह खुजली-मारी मरियल मादा पसंद नहीं।"

इसके बाद वह चुप हो गई, फिर जैसा उसका स्वभाव था सामने चारपाई पर लेट गई। इस चारपाई पर जिसके नीचे शराब के खाली पौए, अद्धे और उनके टूटे काग पड़े हैं वह एक गीत गुनगुनाने लगी, जिसमें एक पुरुष अपनी पत्नी से कहता है कि तू मेरे लिए जान का जंजाल हो गई है, एक बार तू मर जा मुझे विधुर होने का बड़ा चाव है। बाबू जी इस गीत का मुझे एक एक शब्द याद है, मैं इस वक्त गाकर नहीं सुन सकता और मुझे अभी दूसरा भी तला लगाना है—और हाँ शायद आपको डाकखाने जाना होगा!

मैंने बूट की ओर देखते हुए सोचा, यह मौन स्वभाव वाला मोची आज कितना वाचाल हो गया है और वाचाल मज़दूर काम अच्छा नहीं करते, फिर भी मैंने दिलचस्पी प्रकट कहते हुए कहा, "नहीं तो मालूम—मुझे आज छुट्टी है।"

मल्लम ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "तो वह आदमी कहता है तू अपने मायके जाकर मरना, फिर मैं वहाँ तेरे फूल चुनने और तेरी मृत्यु पर शोक करने के लिए आऊँगा। वह उत्तर देती है, तुम हर्गिज़ हर्गिज न आना, मैं मर गई—माता पिता की चन्दन की शहतीरी बह गई, तुम्हारा क्या गया, और इसके बाद अकस्मात वह मर जाती है तो वह उसकी समाधि पर जाकर कहता है—गौरी एक बार तो बोल, देख मैं कितनी धूप में, कितनी दूर से पैदल चल कर तेरी समाधि पर आया हूँ, जंड की चितकबरी छाया मृत्यु की आवाज़ बनकर कहती है, मैं मृतकों से मनुष्य का सा अस्थायी प्यार नहीं करती, मल्लम कहता है, गौरी एक बार तो जी जा, मैंने विधुर होकर बहुत दुःख पाया है।"

इसके बाद मल्लम ने मेरे जूतों की सिलाई छोड़ दी, अपनी पगड़ी से पल्लू उतारा और उससे अपनी आँखें पोंछने लगा, भावावेश में मेरी आँखें भी गीली हो गई थीं। उस समय मैं एक कथानक के रूप में उस गीत के मूल्य पर विचार कर रहा था। मल्लम ने एक ऐसी बात बताई जो मानव-स्वभाव पर एक कटाक्ष थी। वह यह कि जब उसकी पत्नी वधू बनकर आई तो मल्लम उसकी जवानी और सुंदरता की सर्वतः रखवाली करने लगा। वह उसे दरवाजे में भी खड़ी देखता तो पीटने लगता—संशय और सन्देह का यह स्वभाव अभी तक शेष था। उस समय तक जब कि गौरी का शरीर बलवान और भरा हुआ था वह उसे कहता रहा, मुझे एक पतली नाजुक सी औरत पसन्द है और जब वह दुबली हो गई तो कहने लगा, मुझे तुम सी मरियल औरतों से अत्यन्त घृणा है। यह उन्हीं दिनों की बात है जब कि कुत्ती वाली घटना उपस्थित हुई थी।

मोची की इन सब बातों से मैंने यही परिणाम निकाला कि गौरी अन्त में मायके जाकर मर गई होगी। नहीं तो मल्लम के इतना भावुक हो जाने का क्या कारण ? उस समय मुझे वह अपूर्ण सी दिखाई दी और मैंने चौंकते हुए कहा, "फिर इसके बाद क्या हुआ—? "तुमने बात तो पूरी ही नहीं की ."

मल्लम बोला, "इन तीन चार महीनों में उधर से कोई पत्र नहीं आया। वह पहले ही बहुत बीमार थी, मर गई होगी। सुल्तान पुर यहाँ से तीन चार कोस दूर पूरब देस में है, रोताथोक डाकखाना लगता है, मैं वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ ? मेरे पास किराया तक नहीं है। मेरे क्रोधी स्वभाव से सभी दुखी हैं, कोई मुझे माँगे की एक कौड़ी भी तो नहीं देता है। यहाँ शराब की कुछ बोतलें पड़ी हैं, और बस, बाबू जी, इच्छा है मैं एक बार वहाँ अफ़सोस करने तो चला जाऊँ।"

लेकिन मल्लम का वह विचार व्यर्थ ही था, उस चमड़े की तरह जो उसने बातों बातों में मेरे बूट के नीचे लगा दिया था और जो एक महीने में ही घिस गया। इस एक महीने के अन्दर मल्लम एक दिन मेरे पास भागता हुआ आया। मैं उस समय चौबारे के छज्जे पर बैठा काठ के जंगले पर टाँगें लटकाए पढ़ने के बजाय पुस्तक के पृष्ठ उलट रहा था। मल्लम ने एक हाथ ऊँचा किया—

"खत है—बाबू जी एक खत है", वह कह रहा था। मैंने जल्दी से चौबारे पर से उतर कर खत पढ़ा सुल्तान पुर से आया था। मल्लम को एक दो शब्द समझ में न आते थे। इस पत्र में गौरी के सम्बन्ध में लिखा था। वह केवल छाछ के प्रयोग से स्वस्थ हो गई थी और चतुर्थी के बाद वापिस आ रही थी। गणेश चतुर्थी को

चन्द्र-दर्शन से कोई कलङ्क लग जाता है—स्वयं भगवान कृष्ण, जिन्होंने किसी पशु के खुरों से बने हुए जल के भरे गढ़े के अन्दर चन्द का प्रतिबिम्ब देख लिया, तोहमत से न बचे। इस चतुर्थी को व्यतीत करके आना था।

ईश्वर बेकार आदमी को काम दे। मैं इन दिनों अपने चौबारे में बैठा मल्लम की फैक्ट्री के टूटे हुए रोशनदानों में से मल्लम का सब क्रिया-कलाप देखा करता। जब उसके साथ काम करने वाले कारीगर चले जाते तो मल्लम एक खूँटी पर लटके हुए चुटले को उतार लेता और बड़े उजड्ड और पाशविक ढङ्ग से उसे प्यार करने लगता जैसे कोई नन्ही मुन्नी सी लड़की गुड़ियासे खेल रही हो और अपने आस पास से बेख़बर उस बेजान गुड़िया से सहस्रों निरर्थक बातें कर लेती हो। चुटले के अतिरिक्त गौरी कोई मैला-कुचैला दुपट्टा अलगनी पर भूल गई थी। मल्लम उसे उतारकर अपनी छातीके साथ भींचने लगता। पत्नी और उसके बाद उसका चुटला, और फिर दुपट्टा और चन्द पौए, मल्लम की सीमित पूँजी थी—क्रोधी और लड़ाका होने के कारण कोई उसके पास तक फटकता न था गौरी ने मायके जाकर उसे खूब ही सज़ा दी और अपने रोग का क्या सहल उपचार ढूँढ़ निकाला—छाछ।

मैं सोचने लगा—अब मल्लम ने गौरी की क़द्र पहिचानी होगी।। जब वह चतुर्थी के बाद वापिस आजाएगी तो वह उसकी पूजा किया करेगा। उस समय धूप के मीठे मीठे ताप में मुझे नींद सी आने लगी और मैं गौरी के सम्बन्ध में सोचता हुआ ऊँघने लगा। उस समय एक ख्याल मेरे दिमाग़ में आया—जीते जी मनुष्य की हड्डियाँ होती हैं और मरणोपरांत फूल हो जाते हैं।

चतुर्थी के तीसरे दिन मल्लम की पत्नी आने वाली थी। उस दिन मल्लम ने फैक्ट्री के सभी मज़दूरों को छुट्टी देकर अपनी मूर्खता और जल्दबाज़ी का प्रमाण दिया—वह स्वयं साथ सारे दिन गाड़ी के समय की प्रतीक्षा करता रहा। उस दिन मल्लम ने रोज़ के नशे में से आध सेर जलेबियों की गुंजाइश निकाली और कटोरे में आध सेर दूध लाकर चारपाई के नीचे रख दिया। बिल्ली के डर से सोरी के मुँह पर छोटी छोटी ईंटें लगा दीं।

पिछले दिनों डोंगर मुहल्ले के छोकरों और काली बाड़ी के चैटर्जियों, मुकर्जियों और बासुओं के लड़कों की गुल्लियाँ और गेंद टूटे हुए रोशनदानों से मल्लम की फैक्ट्री में जा पड़े थे। छोकरों ने डर से इन्हें माँगने का साहस ही न किया था। अकेला मल्लम ही अपनी गौरी के आने की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था, वे बच्चे भी उसकी राह देख रहे थे और आज मल्लम के घर के इर्द-गिर्द मँडला रहे थे, कब वह आएगी और गुल्ली देगी। पड़ोस के अन्धे उस्ताद की लड़की सरैया कई बार पूछ चुकी थी, मौसी कब आएगी? गौरी की पड़ोस की सब स्त्रियों से मेल-जोल था, वह सरैया का सिर देख दिया करती थी जिससे गत वर्ष लीखें पड़ गई थीं। फैक्टरी की पीठ की ओर ज्वालाप्रसाद का घर था, वह एक बार एक दिन के नोटिस पर बदल गया था तो मल्लम की पत्नी ने एक दिन में उसके तीन दर्जन के लगभग वस्त्र धो डाले थे। वे सबके सब चतुर्थी से तीसरे दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वे बार-बार गौरी के सम्बन्ध में पूछते तो मल्लम को अपनी अप्रियता की तुलना में गौरी की सर्वप्रियता का ज्ञान होता। कभी कभी वह सोचता शायद यह सब कुछ गौरी की सुन्दरता के कारण होगा, स्त्रियां भी तो स्त्रियों पर आसक्त हो जाती हैं, उसकी सहेलियाँ बन जाती

हैं और उसके इर्द-गिर्द मँडराती हैं। फिर उसमें द्वेष और विद्रोह का भाव पैदा हो जाता और जब कभी कोई नवयुवक पड़ोसी उसके घर के सम्बन्ध में बात करता तो मल्लम बड़ी संशयात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखता, इसीलिए मैंने गौरी के सम्बन्ध में हर प्रकार की बात-चीत को सावधानी की तौर पर विस्मरण कर दिया था, जब कि मेरी भी इच्छा थी कि मेरे चौबारे के सामने थोड़ी सी रौनक हो जाए और इस सूनी फैक्टरी के अन्दर से एक पतली सी मधुर आवाज़ आया करे, एकदम से फूल सा चेहरा दिखाई दे और छुप जाए। गौरी के चले जाने के बाद चिरकाल तक मैं इस रिक्तता का अनुभव करता रहा। इस दशा में यह कमी मल्लम को कैसे न अखरती होगी, मल्लम को जिसकी गौरी अपनी मिलकियत थी, जिसे उस पर यथोचित अभिमान था, उसकी प्रसिद्धि को देख कर आज संभवतः पहली बार मल्लम में चिड़चिड़ापन छोड़ देने और हर किसी से मेल-मिलाप रखने की इच्छा पैदा हुई। उसने बच्चों की गुल्लियाँ और गेंद उठाए और मैदान में खेलते हुए बच्चों को दे दिए। फिर उसने सरैया को बुलाया, इसके साथ और दो तीन छोटी-छोटी लड़कियाँ भी थीं, मल्लम ने जेब में से इकन्नी निकाली और उसे सरैया के हाथ पर रखते हुए वात्सल्य भाव से बोला—

"यह खर्च लो, बेटा! लेकिन देखो तेल की चीज़ मत खाना।" इस 'तेल की चीज़ मत खाना' में 'ज़िन्दगी'—अच्छी ज़िन्दगी, और तत्सम्बन्धी उपकरणों से एक अविकल्प सन्धि का भाव प्रगट था। उस दिन मल्लम स्टेशन पर पत्नी को लेने गया और जब शाम को वापस आया तो उसके साथ कोई औरत न थी। वह वैसे ही शोक-ग्रस्त सा उदास वापस चला आ रहा था, सुल्तानपुर से आने वाली

गाड़ी में उसकी पत्नी नहीं आई थी।

उस दिन मल्लम ने बचे हुए पैसों से शराब मँगाई और खूब पी और पगड़ी के खुलते हुए पेचों को लपेट-लपेट कर गंदी-गंदी गालियाँ देता रहा।

सन्ध्या के समय उसने दुपट्टे को उतारा और उसे आँखों से लगाकर रोने लगा, फिर स्वतः उसका ढाढस सा बँधा, यद्यपि वह नशे में था फिर भी वह दीवाने कुत्ते की तरह मुँह में झाग पैदा किए इधर से उधर और उधर से इधर घूमने लगा। कभी-कभी चुटले को उतार कर चूम भी लेता। मुझे इन रोशनदानों में से सब कुछ नजर आ रहा था, मैंने अपने कमरे के साथ रहने वाले यासीन को भी मल्लम की चेष्टाएँ दिखाईं।

रात के नौ साढ़े नौ का वक्त था मैं और यासीन छज्जे पर खड़े मल्लम को देख रहे थे। मिट्टी के तेल के लेम्प की रोशनी में मल्लम ने हमारे देखते देखते सब कपड़े उतार दिए और नंगा खड़ा हो गया। फिर उसने कहीं से अपनी पत्नी की लाल सदरी निकाली और उस चारपाई पर जिसके नीचे शराब की बोतलें और ढकने पड़े थे वह अकेली सदरी पहन कर सो गया।

तदनन्तर एक और पत्र आया, जिसमें मल्लम की पत्नी ने अपने न पहुँचने का कारण बताया था। कहीं चतुर्थी के दिन भूले से उस वहमी औरत की दृष्टि चाँद पर पड़ गई थी और वह उपाय करवा रही थी।

पत्र में और बातों के अतिरिक्त सुल्तानपुर से वापिसी की निश्चित तिथि भी लिखी थी। उस दिन पहले की तरह सरैया और दूसरे बच्चे पूछने के लिए आए और हमने जान बूझ कर इस बात

को न छेड़ा। उस दिन मुग़लपुरे के स्टेशन पर से एक लीडर गुज़रने वाला था इसलिए मैंने और यासीन ने भी स्टेशन जाने का निश्चय किया।

मल्लम ने उस दिन भी पहले की तरह फैक्ट्री के कारीगरों को छुट्टी दे दी और सकोरे में दूध मँगा रखा। कारीगर भी मल्लम की इस व्यग्रता और उसकी पत्नी के न आने पर व्यंग कसते हुए हँसते थे और एक दूसरे को आँखें मारते थे।

सन्ध्या के झुटपुटे में मल्लम स्टेशन की ओर चल पड़ा। हम भी उसके पीछे पीछे जा रहे थे। स्टेशन नगर से पौन मील के लगभग था और अभी इतना उजाला था कि मार्ग में शाह जी के बाग़ के संतरे और नारङ्गी रङ्ग दिखाई दे रहे थे। तीन चार आवारा जानवर बाँध को तोड़कर बाग़ में प्रवेश कर रहे थे और हमारे सामने कोई सौ गज़ की दूरी पर मल्लम मार्ग में पड़े पाषाण-खण्डों को ठोकरें मारता चला जा रहा था। उसने सिर पर एक लाल बनारसी साफा बाँध रखा था। कभी मल्लम गर्द गुबार में हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता और कभी उसका बनारसी साफा धुँधलके को चीरता हुआ दृष्टि में खुबने लगता।

उस दिन स्टेशन पर भीड़ थी, कोई आध घंटा प्रतीक्षा करने पर गाड़ी आई। उसके मध्य में एक जनाना डब्बा था और स्त्रियों की भीड़ में दो अन्वेषक और सहमी हुई आँखें चिन्ता के भाव से प्लेटफार्म पर घूमने वाले सुन्दर से सुन्दर धनी-मानी पुरुषों के समूह में एक कुरूप, निर्धन और चिड़चिड़े आदमी को खोज रही थी। मल्लम धीरे-धीरे भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा, उसने देखा गौरी का स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा हो गया है और उसका चेहरा विकसित कुसुम की तरह दिखाई देता था। लम्बी यात्रा के

कारण थकावट के चिह्न स्पष्ट थे। आँखें चार होते ही उत्सुकता की वह दशा न रही थी सम्भवत: वह अपनी कमज़ोरी को प्रकट करना नहीं चाहता था।

मल्लम ने दो एक मैले-कुचैले वस्त्रों की गठड़ियाँ, गन्नों की पूली तथा कुछ और चीज़ें उतारीं और इसके बाद गौरी भी नीचे उतर आई।

चलते-चलते भीड़ में गौरी किसी के साथ भिड़ गई। मल्लम ने इस घटना को देखा। इसके अतिरिक्त पुल की सीढ़ियों पर कुछेक बेकार युवक खड़े गौरी को देख रहे थे जो एक विशेष प्रकार की भावना में उमड़ी सी चली आ रही थी—मल्लम ने क्रोध से पीछे देखा और बोला—

"गौरी !"

गौरी ने काँप कर इधर उधर देखा और घूँघट सिर पर डाल लिया। अब उसे रास्ता नहीं सुझाई देता था। मल्लम के धोके में उसने अपना हाथ किसी और पुरुष के हाथ दे दिया या शायद यह चतुर्थी के चन्द्र-दर्शन के कारण था कि मल्लम ने क्रोध से हकलाते हुए कहा—

"यह नया ढङ्ग सीख आई हो—फिर आ गईं मेरी जान को दुख देने।"

उस समय पुल के पास एक मरियल सा कुत्ता एक सुन्दर कुतिया के सामने प्रेम-प्रदर्शन करते हुए दुम हिला रहा था।

चेचक के दाग़

अब वह ऐसे स्थान पर खड़ा था जहाँ किसी की आलोचक दृष्टि नहीं पहुँचती थी। लोहे के बड़े कीलों वाले बुलन्द शहरी फाटक के पीछे जहाँ ढोर का सारा गोबर बिखरा पड़ा था और उसकी बदबू माघ की धुंध की तरह पृथ्वीतल के साथ साथ तैर रही थी, जहाँ उसकी बहिन एक बटुल में गली की प्रसूता स्त्री के लिए गौमूत्र ले रही थी लेकिन सुखिया ने तो इनका मुँह बहली ही में देख लिया था—इस पर चेचक के बड़े-बड़े और गहरे दाग़ थे जैसे उसके मायके मातन-हेल की मोटी-मोटी रेत पर वर्षा की बड़ी बड़ी बूँदें पड़ी हों।

इस नए घर का रहन-सहन कितना पुराना था और यूँ भी वह कुछ सूझवाले हाथों की अपेक्षा रखता था। दीवारों में रणजीत-शाही छोटी ईंटें बूढ़े काका के दाँतों की तरह अपने भरे जबड़ों में अलग २ और बाहर उभरी हुई थीं—दीवारों की टीप—और चूना बरसों हुए उड़ चुका था। एक दीवार पर मिट्टी और भूसा मिलाकर लेपन किया गया था, फिर इस पर चूना फेर कर गेरुए रंग से बड़े बड़े भद्दे नागरी अक्षर लिख दिए गए थे। भण्डारे के समीप हँडिया पर महरिया बैठी एक बिना अवसर का और बेसुरा गाना गा रही थी—'अपजस की मत बाँधो गठरिया' ······ बेचारी महरिया! वह उन अपराधों के लिए लज्जित हो रही थी जो उसने कभी नहीं किए थे, जो वह करने के योग्य ही न थी, या शायद वह यह गाना इसलिए गा रही थी कि छोटे लाला के विवाह पर उसे बहुत थोड़ा लाग हुआ था।

"अरे ओ लाला ! तू क्यों खड़ा रह्या गोबर माँ ?"

घर की बड़ी 'माँ' ने आवाज़ दी, इस समय बड़ा लाला नारियल का दम लगाए हुए सेहन में खड़ा 'माँ' पर हँस रहा था—अब राम नाम के बाद मैया ने कुल्ली कर दी, भला क्या लाभ इस पूजा-पाठ से ? राम नाम ही कुल्ली कर दिया, वाह री मैया ! ··· चुप रे, घर की माँ ने एक भोंडी मुस्कराहट से कहा और फिर पूजा की अन्तिम कड़ी पूरी करने के लिए वृद्धा ने पीतल की टूटी फूटीसी लुटिया उठाई और आँगन में स्थित ब्राह्मण पीपल के सर्दी में ठिठरते हुए पैरों पर बरफ का सा ठंडा जल गिरा दिया। पीपल काँप उठा, शायद वह पुरवा का झोंका था। फिर अश्वत्थ के घेरे में मौली का लाल पीला धागा लपेट दिया। बड़े लाला का छोटा लाला बहुत नटखट था, उसे छोटे बड़े पास पड़ोस के सब 'साहब' कहते थे, घर के सब लोगों के विरोध करने पर भी उसने एक बीसा पिल्ला पाल लिया था और बाप दादा का जन्म भ्रष्ट कर दिया था। साहब उठा तो पिल्ला भी साथ ही। उठते ही पिल्ले ने अँगड़ाई ली, मुँह खोला, ज़बान मचकाई, धुवाँ सा उड़ाया और पीपल के चरणों में पहुँच, एक टांग उठा अपने अद्‌भुत ढंग से पूजा कर डाली।

सुखिया के सिर में रात के सौ मील के चक्कर बाकी थे। लारी की घूंघूं अभी तक उसके कानों में गूँज रही थी और उसे घेरे आ-रहे थे। बड़ी ननद ने चीनी की सेट में लैमू का अचार ला रखा था—'आय हाय छीः' सुखिया ने व्यग्र होते हुए कहा—"यह लोग चीनी के टिंडर व्यवहार में लाते हैं—इन्हीं जूठे बर्तनों में खाना खाएँ—म्लेच्छ मुसलमानों की तरह—छीःछीः। बहिन जा तो ज़रा" सुखिया ने पास खड़ी उनकी भांजी को कहा। "कोई मुरादाबादी नहीं तुम्हारे हियां ? इस में तो ले आओ थोड़ी सी चाट, मतली रुक जाए, ज़रा

मैं चीनी बीनी के बर्तनों में नहीं खाती" और नववधू नाक चढ़ा उबकाइयां लेने लगी। बड़ी ननद जी में खुश हुई—माँ तो बूढ़ी हो गई, वह तो जूठे और दूसरे बर्तनों में भेद क्या देखेगी, लेकिन यह—अब इस नैया का खेवैया आ गया घर माँ!

ननद ने सेट उठाई और टल गई। ऊँचे बुलन्द-शहरी फाटक की ओट में खड़े वे सुखिया को साफ़ दिखाई दे रहे थे, अंगरेज़ी ढग के बाल कटा रखे थे, ननद कह रही थी, "नखलऊ से 'बीआ' पास किया जयरमे ने-घर से परे शहर में कुँआरों के मकान (बोर्डिंग) में रहते थे, जनेऊ भी न पहनते, सिर पर चोटी भी न रखते।" सुखियाने जी में कहा, "यह म्लेच्छ विद्या है न, यह रंगरेजी और फिर इन चेचक के दागों का क्या होगा? जब यह भयानक मुख पास आएगा तो तबीयत बहुत घबराएगी, और कोई लैमू का अचार काम नहीं आएगा। सब सो रहे होंगे, सब कुछ मुझे अकेले ही भुगतना होगा, क्या देखा इन लोगों का चाचा ने? मुझे घोर नरक में धकेल दिया" और पलंग पर पड़ी सुखिया घुटनों में सिर दबा रोने लगी।

हज़ारी मुहल्ले की औरतें अभी तक वधू का खरा खोटा परखने आ रही थीं—वधू खरी थी, पांसे का सोना, जिस धर्म काँटे पर कहो तुल जाए, उसे मुँह बसूरे देख कर आप भी मुंह बसूरने लगीं—सच है 'माता पिता बड़ी दौलत है, कैसे छोड़े जाए'। एक दिन में? एक स्त्री बोली—जब मेरी शादी हुई तो—उसके बाद वह स्त्री सुखिया से भी ऊँची सिसकियाँ लेने लगी, सुखिया हैरान थी। उसने इस समय तो माता पिता को याद नहीं किया और उस प्रौढ़ा स्त्री का निचला ओंठ ऊँट के ओंठ की भाँति लटक गया। थोड़ी

देर बाद उस प्रौढ़ा स्त्री को आप ही 'ब्याह-शादी' के घर रोने का असगुन अनुभव होने लगा, अपने दुपट्टे से उसने आँखों का जल पोंछ लिया—दुनिया की यही रीत चली आती है—'बिट्टो! तू सुख यहाँ का माँग! तुम्हारे काका तो गौ रूप हैं और जयराम तो बेटियों जैसा बेटा, जिभ्याँ काँ हैं मुँह में? रात को रात कहे दिन को दिन—नाचेगा तेरे इशारे!"

"आज बड़ा शुभ दिन है"—घर की माँ बोली, गली में जो असरतो है न, उसके हाँ लाला हुआ, तेरह दिन हुए पंजाबियों के हाँ बेटा हुआ, तभी वह आज गौ उत्तर न्हलावे के लिए ले गई, यह फसल बेटों की है, बेटों की बहार है और सादियों की। इधर बेटा हुआ, इधर सादी हुई, अरी समुद्री की माँ—काँ रहा तेरा साहब? बड़ी बहू घर आई तो मैंने तेरा साहब गोदी डाला था, ऊपर तले तीन बेटे हुए, मंझली की गोदी में बिठाया तो पटक पहले साल लाला दूसरे साल बिट्टो, लेकिन बिट्टो का बुरी है? लाला से भी ज्यादा मोहवे, गोदी हरी चाहिये और काँ है वह, मैं उसे दुल्हन की गोद में बिठाउँ हूँ।"

सुखिया गठड़ी हो गई—बेटा और चेचक के दाग!

गूजर ढोर खोलने आगया था और एक कमीन लंगर लँगोटा कस सेहन को फावड़े से साफ़ कर रहा था। धुंध सलज्ज सूर्य की किरणों में घुल-मिल रही थी और दुर्गन्ध को कमीन के तेज ने समेट लिया था। धुंध का घूंघट उठते ही प्रातः का चन्द्र-सा मुखड़ा दिखाई देने लगा। नगर के हीजड़े बटकर पंजाबियों के और इधर गाने बजाने चले आए, उस समय असरतो के घर जमादारनी सिरस बाँध रही थी, सुखिया सभी कुछ देखती थी लेकिन उसे सब कुछ काटने दौड़ता था।

सेहन के धोये जाने से यह हिले, और पिल्ले को चुमकारते हुए बड़े भैया के पास चले आए—लेकिन यहाँ भी यही दिखाई देता था जैसे छुप रहे हैं और अपना चेचक से भरा हुआ मुँह स्वयं ही दिखाने को हिचकिचाते हैं। सुखिया के मन में कुछ करुणा सी पैदा हो गई 'राम किसी को कुरूप भी न बनाएँ—अपने आप लज्जा आती है, मानती हूँ इसमें इनका कोई दोप नहीं, लेकिन मेरा क्या दोष है ? मेरे रूप से तो स्त्रियाँ जलती थीं और इनके रूपसे तो भूत भी न जलें।"

बड़ी ननद मुरादाबादी वर्तन में अचार ले आई। सुखिया ने अपनी पतली पतली उंगलियाँ काश्मीरी फ़रद से बाहर निकाली और अचार की ओर बढ़ाई। ननद ने भावी की उँगलियाँ देखीं और फिर अपनी मोटी 'गोभी के डंठर सी उँगलियां' और बोली जयराम ने तो कोई मोती दान किए हैं पिछले जनम में। सरसों-नाड़ सी कोमल नाक और लम्बी उँगलियाँ हैं—सच बता, सुखिया भावी कौन से साँचे में ढली थीं तुम ?

इतना प्रेम ? सुखिया सोचने लगी, ये सम्बन्ध ही कुछ ऐसे होते हैं—अपने आप इतना प्यार हो जाता है, इसके कारण सब कुछ अच्छा लगने लगता है—इसके लिए सास, ससुर, देवरानी, जेठानी, ननद, ननदोई सब की सहनी पड़ती है, लेकिन जब वह ऐसी सूरत का हो तो किसकी सहेगा आदमी ? अफ़ीम का गोला खा सोय रहे ! "तू बर्तन बटाएगी ?" ननद ने पूछा

सुखिया चुप रही—वह इस रीति को पूरा करने से शर्माती थी ननद ने सुखिया की ठोड़ी के नीचे हाथ रखा और मुँह को ऊपर उठा दिया—आँखें बन्द थीं जैसे बहुत रस आ रहा हो—अधर

सीप की तरह मिले हुए थे, ऊपर के अधर की कमान कितनी अच्छी दिखाई देती थी—ननद ने कहा,

"अच्छा, एक बात बता।"

सुखिया ने प्रश्न के लिए आँखें खोल दीं—ननद ने इधर उधर देखा—सब स्त्रियाँ अपने अपने काम में व्यस्त थीं, "क्या जयराम ने तुझे देखा है?" वह बोली, सुखिया का जी चाहा कि वह पूछे, "कौन जयराम? और फिर बड़ा आनन्द आए।" लेकिन उसने मुँह परे हटा लिया और गठड़ी होने लगी। ननद ग्रामीणा थी और अधिक बलवान। उसने दुल्हन को सुकड़ने न दिया और फिर अपना प्रश्न दुहराया। सुखिया ने जान छुड़ाने के लिए 'हाँ' में सिर हिला दिया।

इसी विवाह के सम्बन्ध में किसी रस्म की तैयारियाँ हो रही थीं। शायद वही बर्तन बाँटने थे, परात में दूध और पानी मिलाकर कुछ रुपये भी रख दिए थे, काका हलवान की गुथली ले आये थे। इसमें रुपये ही रुपये थे ताकि सुखिया एक मुट्ठी में जी भर कर रुपये निकाल ले। ननद ने बताया, बहू का हाथ बहुत कोमल है। 'काका जी ही जी में प्रसन्न हुए—एक हाथ में बहू अधिक से अधिक ६०) निकाल लेगी। काका के पास ही ननदोई खड़ा था—वह घर का दामाद था, छोटा ननदोई उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं आया था। इस ननदोई ने सिर पर मलमल का पूरा एक थान लपेटा हुआ था, नीचे लम्बा कोट 'वह भी लटठे का' और कमर में आधी धोती ने उसे बहुत हास्यास्पद बना दिया था। घर का दामाद होने से उसकी बहुत पूछ होती थी—नहीं तो वह एकदम बिगड़ जाता था और उस प्रतिष्ठित आदमी के बिगड़ने से सभी डरते थे। एक जयराम उससे नहीं डरता था, उसे ननदोई के अस्तित्व से लज्जा आती थी।

सब अपने अपने काम में लगे हुए थे, सुखिया के कमरे की खिड़की से दूर भूमि की ऊँच-नीच युवती के ढके हुए उरोजों की तरह दिखाई देती थी—उन टीलों के निकट, किसी खेत की पनीरी सरकी हुई अँगिया सी बन गई थी। पृथ्वी अपनी नग्नता को छिपाने के लिए धुंध की चादर लपेटती थी लेकिन सूर्य उसकी सारी चादर को खींच लेता था—आखिर पृथ्वी बेबस होकर पड़ी रही ...... 'यह अब और समीप आ गए थे और सुखिया इन्हें अच्छी तरह देख सकती थी। वह दो मिनट के लगभग जयराम को देखती रही। जयराम को एक और आदत भी थी, वह पल दो पल के बाद सिर को एक झटका सा देता था जैसे कोई कह रहा हो "इधर आ जाओ।" सम्भवतः इसीलिए जयराम स्त्रियों के निकट नहीं जाता था। दो मिनट देखने से सुखिया की दृष्टि से चेचक के दाग़ जैसे धुल गए और जयराम का चेहरा निर्दोष दिखाई देने लगा है, सारी आयु साथ रहने से शायद यही मुख इतना परिचित हो जाए कि चेचक के दाग़ देखते हुए भी दिखाई न दें।

धीरे-धीरे दोपहर हुई, दिन ढलने लगा। सुखिया ने काका की गुथली में हाथ डाला—अपने हाथ को पूरा फैलाया और अस्सी-पचासी के लगभग रुपए निकाल लिए। सब स्त्रियाँ हँसने लगीं, बहू बड़ी चालाक है 'ए काका सँभाल के रखियो अपनी गुत्थी को, बहुत खर्चीली बहू आई है।' दूसरी बोली, 'इतना कमाया है काका ने दूध से, सात पीढ़ी तक काफ़ी है और काका क्या धन को समाधि में ले जायगा?' घर की 'माँ' काका को बचाने निकल आई, 'मेरा जयराम क्या कम कमावे है? तीन बीस से ऊपर एक पावे है रेलवाई माँ—दो जीव हैं, कोई बोझ नहीं, खावें, मौज़ उड़ावें।"

अच्छा हुआ सुखिया को भी इनकी आय का अनुमान होगया, वेतन तो इतना बुरा नहीं था, आजकल कहाँ इकसठ रुपये मिलते हैं ? इन्होंने चौदह जमात पढ़ी हैं तो कौन सी बड़ी बात की है, सुखिया के चचेरे भाई ने सोलह पढ़ी थीं, ऊपर से क़ानून, और प्रान्त का कोना-कोना छान मारा, अन्त में एक ठग कम्पनी में नौकर हो गया। तत्पश्चात् बर्तन बाँटने थे, लेकिन जयराम न आए। शायद इन्हें सुखिया की घृणा का ज्ञान हो गया था और वे एकान्त में अपनी सूरत को कोस रहे थे। महरिया अपनी ही गज़ल गा रही थी—सुखिया ने कहा—अपजस की मत··· ···और जयराम को यही अनुभव होता था जैसे यह गाना उसकी दशा के अनुकूल है। जो भी सुनता था महरिया को यह गाना गाने से रोकना चाहता, लेकिन रोकने से पहले प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इसमें अपना ही जीवन दिखाई देता था और वे महरिया को डाँटते-डाँटते स्वयं उसके रस में खो जाते।

सुखिया ने जयराम को कल्पना में अपने समीप आते देखा। उस समय उसे कमर के नीचे सारा शरीर जलता हुआ प्रतीत होने लगा या फिर कानों की कनपटियाँ फड़क रही थीं। यह ज्वाला इतनी तीव्र थी कि इसमें चेचक के सब दाग़ भस्म हो गए थे, दाग़ तो एक तरफ़ यदि चेहरा हब्शी का सा होता तब भी सुखिया को कुछ प्रतीत न होता। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था और या फिर ज्वाला की लपटें थीं जिसमें एक पुरुष और स्त्री की मूर्तियाँ कुन्दन की नाईं दमकने लगी थीं।

इन्हीं विचारों में सुखिया जयराम की शकल को भूल चुकी थी—वह बहुत सी बातें भूल जाती थी. उसे रह रह कर ख्याल आता—वे रस्म पर आए क्यों नहीं ? ज़रा रौनक़ हो जाती, चाहे

हृदय घृणा से दग दग करने लगता तो भी इस घृणा का और क्या उपचार है ? यही न कि और समीप हो जाए आदमी—और किसी के दोष गुण में परिवर्तित हो जाएँ ।

वे नहीं आए—उन्हें कैसे पता चल गया कि मुझे उनसे घृणा है, सुखिया सोचने लगी—ज्योंही मैंने मुँह के दाग़ उड़ते देखने चाहे थे त्यों ही वे चेहरे से उड़ गए। अब आँगन में टहलने वाले का मुख फटकार की तरह दिखाई न देता था और यह दाम्पत्य जीवन का प्रथम दिवस था और वह चेचक के दाग़ों को इतना भूल गई थी—इतना ....

दूध रसोई में तसले पर कोड़याले साँप की तरह बल खाता हुआ आग में गिरने लगा। "हो री, अपजस की गठरिया !" माँ ने महरिया को आवाज़ दी, "का हो गवा तो को ? दूध उबलता वा न दिखे ? राँड, और पैसे माँगने को सिर पर चढ़ी चली आवे, पैसे न दूंगी राख झोंक दूंगी मुँह माँ" और माँ पुपलाते हुए मुँह के साथ न जाने क्या कुछ कह गई ।

ढोर संध्या के समीप फाटक के भीतर आ चुके थे, दूध भी दोहा जा चुका था। पीतल के दोहने तख्तपोश पर रखे हुए थे। काका दामाद की सहायता से तख्त पर बैठे एक लाल जिल्द वाली बही पर जल्दी जल्दी कुछ लिख रहे थे, ऐनक बार बार मुँह पर गिरती थी, ऐनक के कुंठित कोने श्वेत रंग के हो गए थे। कमानी के स्थान पर एक धागा कान तक चला गया था और टूटे हुए शीशे में से कभी कभी एक आदमी के दो दो दिखाई देने लगते थे ।

घर की औरतों में धीमी खुसर-फुसर हो रही थी, वे कड़ी दृष्टि से जयराम की ओर देखती थीं। सुखिया का माथा ठनका, वे क्यों नहीं आए, सुखिया ने फिर अपने आप से प्रश्न किया; और

उसका दिल धड़कने लगा। उसे फिर मातनहेल याद आया, फिर जयराम ……। सभी स्त्रियाँ जयराम को कुछ कह रही थीं। घर की माँ की तरह सुखिया को भी जयराम का पक्ष प्रबल करने का विचार आया, परन्तु…… परन्तु…… सुन्दर चेहरे पर यदि काला दाग़ हो तो चेहरा और भी अधिक सुन्दर हो जाता है, मर्द कमाऊ हो, सुशील हो, स्वस्थ हो, शिक्षित हो तो फिर चेचक के दाग़ उसकी सुन्दरता हो जाते और सुखिया अब तक उन चेचक के दाग़ों में सुन्दरता पा लेने में सफल हो गई थी।

रात हुई, सिर जोड़ी के लिए जयराम की खोज हुई, लेकिन जयराम अदृश्य था, बड़ी ननद घबराई हुई आई और बोली—

'सुखिया बहिन बुरा न मानना—जवानी में सभी हठी होते हैं

सुखिया बोली, 'क्या हठी है?" "यही बचपना है न, थोड़ा समय व्यतीत हो जाएगा तो अपने आप समझ आजाएगी।"

सुखिया आश्चर्य से ननद के मुख की ओर देखती हुई बोली, "जीजी यह का बातें हैं—मेरी समझ में तो न आवे।"

"कोई बात भी हो", ननद बोली, "जयराम कालज का पढावा है न, उ‍ खयाल है कि सुखिया का नाक लम्बा है…… …… इसी लिए वह रसम पर नहीं आया और अब कहाँ लम्बा है नाक तुम्हारा ? ……"थोड़ा समय निकल जाएगा तो अपने आप…… "

सोहागरात अपने पूरे वेग के साथ सिर पर आ रही थी, सुखिया ने चेचक के दाग़ों को क्षमा करने की सीमा से परे जाकर उसमें सौंदर्य खोज लिया था, लेकिन जयराम उसके नाक को क्षमा न कर सका और रात ठंडी, उदास, उनींदी रात कटती गई …… कटती गई…………।

तुलादान

धोबी के घर कहीं गोरा-चिट्टा छोकरा पैदा हो जाए तो उसका नाम बाबू रख देते हैं। साधुराम के घर बाबू ने जन्म लिया और यह केवल बाबू के रंग-रूप पर ही निर्भर नहीं था। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी सब आदतें बाबुओं जैसी थी। माँ को घृणा से 'प यू' और बाप को 'चल बे' कहना उसने न जाने कहाँ से सीख लिया था—वह उसकी अभिमान से भरी हुई आवाज़, फूंक फूंक कर पाँव रखना, जूतों समेत चौके में चले जाना, दूध के साथ मलाई न खाना, सभी स्वभाव बाबुओंवाले ही तो थे और जब वह अपने अधिकार भाव से बोलता और 'चल बे' कहता तो साधुराम... "खी...खी, बिलकुल बाबू" कहकर अपने पीले पीले दाँत निकाल देता और चुप हो जाता।

'बाबू' जब सुखनन्दन, अमृत तथा अन्य धनी बालकों में खेलता तो किसी को मालूम न होता कि यह उस माला का मनका नहीं है, सच तो यह है कि ईश्वर ने सब जीव-जन्तुओं को नंगा करके इस दुखियाँ में भेज दिया है, कोई बोली बोली नहीं दी। यह निर्धन, यह लखपति, महाब्राह्मण, भनोट, हरिजन, लिगुआ फ को सब कुछ बाद में लोगों ने ही आविष्कृत है किया।

बधई के पुरवा में सुखनन्दन के मां-बाप खाते-पीते आदमी थे साधुराम और दूसरे आदमी उन्हें खाते पीते देखने वाले......। सुखनन्दन का जन्म-दिन आया तो पुरवा के बड़े बड़े नेता गगनदेव भंडारी, डालचन्द, गनपत महाब्राह्मण आदि भोज पर निमंत्रित किए

गए। दालचन्द और गनपत महाब्राह्मण दोनों मोटे आदमी थे और और प्रायः प्रत्येक भोज में देखे जाते थे। उनकी उभरी हुई तोंद के नीचे पतली सी धोती पर लँगोट, भारी भरकम शरीर पर हल्का सा जनेऊ, लम्बी चोटी, चन्दन का टीका देखकर बाबू जलता था, और भला यह भी कोई जलने की बात थी। संभवतः एक नन्हा सा कोमल बदन बाबू बनने के बाद मनुष्य एक भद्दा और बेडौल सा पंडित बनना चाहता है—और पंडित बनने के बाद एक नीचात्मा अपराधी मनुष्य और अछूत···। दालचन्द और गनपत महाब्राह्मण के चलन के संबन्ध में बहुत सी बातें प्रसिद्ध थीं—यह मानव-प्रकृति की विलक्षणता हर जगह करिश्में दिखाती है।

बाबू ने देखा, जहाँ भंडारी और महाब्राह्मण भनोट सब आए हुए थे वहाँ उभदाँ मरासन, हरखू, जड़ई दादा, कारन्दे और दो तीन जूमी पत्तलें और दोने उठाने वाले महरे भी दिखाई दे रहे थे। जब दस पन्द्रह आदमी खाने से फ़ारिग़ हो जाते तो महरा पत्तलों और दोनों से बची-खुची चीज़ें एक जगह एकत्रित करते। जमादारनी एक जगह चादर का पल्ला बिछाए बैठी थी, वह सब बची खुची चीज़ें हलवा, दाल, तोड़े हुए मास, पकौड़ियाँ मिले हुए आलू मटर और चावल उस बिछी हुई चादर या एलमोनियम के एक बड़े से जँगाले हुए तसले में डाल देते। उसके सामने सब चीज़ें खिचड़ी देखकर बाबू न रह सका, बोला—

"जमादारनी—कैसे खाओगी यह सब चीज़ें?"

जमादारनी हँस पड़ी, नाक सुकोड़ती हुई बोली—"जैसे तुम रोटी खाते हो।"

इस अद्भुत और सरल से उत्तर से बाबू के अभिमान को ठेस लगी, बोला—

"कितनी नासमझ हो तुम ...... इतनी सी बात न समझी, तभी तो तुम लोग जूतों में बैठने के योग्य हो।"

हलालखोरी की अकड़ आबाल-गोपाल प्रसिद्ध है। माथे पर तेवर डालती हुई जमादारनी बोली—

"और तुम तो आकाश पर बैठने योग्य हो ...है न?"

"ऐसे ही क्रुद्ध हो गईं तुम तो" बाबू बोला "मेरा मतलब था, सब्ज़ी में हलवा, पकौड़ियों में आलू मटर, पोलाव में फिरनी यह सब चीज़ें खिचड़ी नहीं बन गईं क्या?"

जमादारनी ने कोई उत्तर न दिया।

भंडारी और महाब्राह्मण को अच्छे स्थान पर बिठाया गया। वे साधुओं की भाँति रुद्राक्ष की माला गले में डाले कनखियों से बार-बार उभदाँ और जमादारनी की ओर देखते रहे। उभदाँ जमादारनी के समीप ही बैठी थी, हरखू, जड़ई दादा धूप में बैठे हुए खाते पीते आदमियों को देख रहे थे। कब वे सब खा चुकें तो उन्हें भी कुछ प्राप्त हो। बाबू ने देखा उभदां के निकट ही ईंधन की ओट में उसकी अपनी माँ बैठी थी—उसके पास ही बर्तन मलने के लिए राख और अधजले उपले पड़े थे और राख से उसका लहँगा खराब हो रहा था, कमीज़ भी ख़राब हो रही थी। चलो कमीज़ की तो कोई बात न थी, वह तो किसी की थी और धुलने के लिए आई थी, एक बार बाबू की माँ ने पहन ली तो कुछ नहीं बिगड़ गया, परमात्मा भला करे बादलों का कि इन्हीं की कृपा से ऐसा अवसर प्राप्त हुआ।

जब अपने मित्र सुखनन्दन को मिलने के लिए बाबू ने आगे बढ़ना चाहा तो एक पुरुष ने उसे चपत दिखा कर वहीं रोक दिया

और कहा, "ख़बरदार धोबी के बच्चे ..... देखता नहीं किधर जा रहा है।" बाबू थम गया, सोचने लगा कि उसके साथ लड़े या न लड़े। महरे का बलवान शरीर देखकर दब गया और वैसे भी वह अभी बच्चा था, भला इतने बड़े आदमी का क्या मुकाबिला करेगा— उसने एक उदास उचटती हुई दृष्टि से अच्छे स्थान पर बैठ कर भोजन करने वालों और अधजले उपलों की राख और जूतों पर पड़े हुए मनुष्यों को देखा और दिल में कहा, "यद्यपि सब नंगे पैदा हुए हैं पर एक सेवक और ब्राह्मण में कितना अन्तर है ?"

फिर मन में कहने लगा, सुखनंदन और बाबू में कितना अंतर है और हल्की सी एक टीस उसके कलेजे में उठी। सत्य तो बाबू के सामने था लेकिन इतने वञ्चक रूप में कि वह स्वयं उसे देखने से घबराता था। बाबू मन ही मन कहने लगा, हम लोगों के अस्तित्व ही से तो यह लोग जीते हैं, दिन की तरह उजले-उजले वस्त्र पहनते हैं ..... वास्तव में बाबू को भूख लग रही थी—वह पकौड़ियों, हलवे-पूड़ी के ध्यान में इस वञ्चक सत्य तो क्या वह अपने अस्तित्व से भी बेखबर हो गया। गरम-गरम पूड़ियों की विचलित कर देने वाली सुगन्धि उसके मस्तिष्क में बसी जा रही थी, एकाएक उसकी नज़र उभदाँ पर पड़ी। उभदाँ की दृष्टि भी टोकरी में घी में बसी हुई पूड़ियों के साथ साथ जाती थी। जब सुखनन्दन की माँ पास से निकली तो उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए उभदां बोली—

'जजमानी .. तनिक हलवाई को डांटो .....ए देखती नहीं कितना घी बह रहा है ज़मीन पर।

जजमानी कड़क कर बोली—

"अरे ओ किशनू ...... हलवाई को कहना, ज़रा पूड़ियाँ कड़ाही में दबा रक्खे।"

बाबू हँसने लगा, उमदाँ कुछ लज्जित सी हो गई। बाबू जानता था कि उमदाँ यह सब बातें केवल इसलिए कह रही है कि उसका अपना जी पूरियाँ खाने को बहुत चाहता है। यद्यपि जजमानी का ध्यान आकृष्ट करनेवाले वाक्य से उसकी इच्छा का पता नहीं चलता, वह आश्चर्य-चकित था और सोच रहा था कि जिस प्रकार उसने उमदाँ के उन असम्बन्धित शब्दों में छुपे हुए वास्तविक अर्थ को पा लिया है क्या। ऐसा भी सम्भव है कि उसके मौन में कोई उसकी बात को पाले, आखिर मौन वार्त्तालाप से अधिक सार्थक होता है।

उस समय सुखनन्दन तुल रहा था—सुन्दर तुला के पलड़े में बैठा चारों ओर देखकर मुस्कराता जा रहा था। दूसरी ओर गेहूँ का ढेर लगा था, गेहूँ के अतिरिक्त चावल बास्मती, चने, उड़द, मोटे माश और दूसरे उसी प्रकार के अन्न भी वहाँ थे। सुखनन्दन को तोल-तोल कर लोगों में वह अन्न बाँटा जा रहा था, बाबू की माँ ने भी पल्ला बिछाया, उसे भी गेहूँ की धड़ी मिल गई, वह सुखनन्दन की चिर-आयु के लिए प्रार्थना करती हुई उठ बैठी। बाबू ने घृणा से अपनी माँ की ओर देखा जैसे कह रहा हो, 'तुम्हें कपड़ों की धुलाई पर सन्तोष ही नहीं, तभी तो हरेक का मैल निकालने का काम ईश्वर ने तुम्हारे सुपुर्द कर दिया है और तुम भी जमादारनी की भाँति जूतों में बैठने के योग्य हो। तुम्हारी कोख से जन्म लेने वाले बाबू को कड़कती धूप में खड़ा रहना पड़ता है, आगे बढ़ने पर लोग उसे सपन दिखाते हैं, हाय तेरी यह फटी हुई असन्तोषी आँखें गेहूँ से

नहीं श्मशान की राख से भरेंगी—पास से माँ निकली तो बाबू बोला, 'थू थू।'

फिर बाबू सोचने लगा, राम जाने मेरा जन्म-दिन क्यों नहीं आता. मेरी माँ मुझे कभी नहीं तोलती—जब सुखनन्दन को उसके जन्म-दिन के अवसर पर तोल कर अन्नदान किया जाता है तो उसके सभी दुःख टल जाते हैं। उसे सर्दियों में बर्फ़ से भी अधिक शीतल जल और गर्मियों में खोपड़ी जला देने वाली धूप में खड़ा नहीं होना पड़ता। बालों में लगाने के लिए खास लखनऊ में मँगवाया हुआ आँवले का तेल मिलता है। जेब पैसों से भरी रहती है। इसके विपरीत मैं सारा दिन साबुन के झाग बनाता रहता हूँ। सुखनन्दन इसलिए बुलबुलों को पसन्द करता है कि वे बुलबुले और उनमें चमकनेवाले सात रङ्ग उसे नित्य नहीं देखने पड़ते। इस प्रकार कपड़े नहीं धोने पड़ते'''सुखी की दुनिया को कितनी ज़रूरत है, विशेषकर उसके माता-पिता को! मेरे माता-पिता को मेरी ज़रा भी ज़रूरत नहीं, नहीं तो वे मुझे भी जन्म-दिन के अवसर पर इसी प्रकार तोलते, और जब से नन्ही पैदा हो गई है—चुड़ैल, डायन! उसी दिन से मेरी चाय की एक प्याली भी बन्द हो गई है''''''। कहते हैं बिना ज़रूरत दुनिया में कोई भी पैदा नहीं हुआ। यह बाथू जो नाली के किनारे उग रहा है देखने को व्यर्थ सा पौधा है, जब इसकी भुजिया बनती है तो मजा ही तो आ जाता है''''''
और ये पूरियाँ!

बाबू की माँ ने आवाज़ दी।

"बाबू,'' अरे ओ बाबू।"

इस समय सुखनन्दन बाबू को देखकर मुस्करा रहा था—अब बाबू को आशा बँधी कि वह खूब ज़ियाफ़त उड़ा सकेगा। बाबू उस

चुभने वाली धूप को भी भूल गया था जो वर्षा के बाद थोड़े समय के लिए निकलती है और उसी थोड़े से समय में ही अपनी सब तपन खतम कर देना चाहती है। उसने माँ की आवाज़ पर कान न धरा, और कान धरता भी क्यों ? माँ को उसकी क्या जरूरत थी, ज़रूरत होती तो उसका जन्मदिन न मनाती, वह तो शायद उस दिन को कोसती होगी जिस दिन वह पैदा हो गया .... यद्यपि बाथू की भुजिया बड़ी स्वादु होती है।

"बाबू ..... अरे बाबू के बच्चे, आता क्यों नहीं ?"

बाबू की माँ की आवाज़ आई।

"बाबू जाओ ... अभी मैं नहीं आ सकता।" सुखनन्दन ने कहा, और फिर एक गर्वीले ढङ्ग से अपने सिल्मे सतारे से कढ़े कोट और बाबू की ओर देखता हुआ बोला,

"कल आना भाई ..... देखते नहीं हो, आज मुझे फुर्सत है ? जाओ।"

उभदां को पूरियाँ मिल गई थीं—वह जजमानी को भूमिष्ठ हो सलाम कर रही थी, बाबू ने सोचा था कि शायद मुस्कराता हुआ सुखनन्दन उसकी चुप्पी में उसके मन की बात पा लेगा, परन्तु सुखनन्दन को आज बाबू का ख्याल कहाँ आता था। आज प्रत्येक छोटे बड़े को सुखी की ज़रूरत थी, पर सुखी को किसी की ज़रूरत न थी—अपने ऐश्वर्य और बाबू के साथ गया और पुराने, टाट के से कपड़ों को देखकर वह शायद उससे घृणा करने लगा था, अपनी व्यस्तता को व्यक्त करते हुए उसने जैसे बाबू के रहे-सहे गर्व को भी मिट्टी में मिला दिया। फिर बाबू को माँ की कटु-आवाज़ सुनाई दी।

"बाबू ... तेरा सत्यानास, तूने (ताउन प्लेग) मारे .....

घुस जाए तेरे पेट में काली माता ···आता क्यों नहीं, दो सौ कपड़े पड़े हैं···लम्बर गेरने वाले, मैं तो रो रही तेरी जान को ···”

बाबू को यह अनुभव हुआ कि न केवल सुखनन्दन ने उसके भावों को ठेस लगाई है और वह उसके साथ कभी न खेलेगा बल्कि उसकी अपनी माँ जिसके उदर से वह व्यर्थ ही पैदा हुआ था, वही स्त्री जिससे उसे संसार में सब से अधिक प्यार की आशा है उससे ऐसा व्यवहार करती है, अच्छा होता, मैं इस दुनिया में जन्म ही न लेता। और यदि जन्म लेता तो इस तरह बाबू न हुआ होता, मेरी मिट्टी इस तरह खराब न होती, आखिर क्या मैं सुखी से शकल-अकल में बढ़ चढ़ कर नहीं ?

सुखनन्दन के जन्मदिन को एक महीना हो गया, तुलादान को आई हुई गन्दुम पिसी, पिस कर इसकी रोटी बनी, बाबू के माता पिता ने खाई, पर बाबू ने वह रोटी खाने से इन्कार कर दिया। जितनी देर तुलादान का आटा घर रहा वह अपने चाचा के घर रोटी खाता रहा। वह नहीं चाहता था कि जिस प्रकार माँगे ताँगे की चीज़ें खा खाकर उसके माता-पिता की भावना परतन्त्र हो गई है, वह रोटी खाकर उसमें भी वह बात आ जाए। गाढ़े पसीने की कमाई हुई रोटी से तो दूध टपकता है और हराम की कमाई से खून। ······ और गुलामी खून बन कर उसकी नस नस में समा जाए, यह कभी न होगा। साधुराम हैरान था, बाबू की माँ हैरान थी। चाचा, जिस पर उसके भोजन का बोझ ज़बरन पड़ गया था, हैरान थे। चाची नाक-भौं सिकोड़ती थी और जब घर में इस अनोखे 'बायकाट' की चर्चा होती तो साधुराम एकदम कपड़ों पर लम्बर गेरने छोड़ देता और पीले पीले दाँत निकालते हुए कहता—

“खी खी······ बाबू है न।”

सुखनन्दन ने अब बाबू में एक स्पष्ट परिवर्तन देखा। बाबू जिसका काम से जी उचाट रहता था, अब दिन भर घाट पर अपने पिता का हाथ बटाता। बाबू अब उसके साथ नहीं खेलता था। हरिया के तालाब के किनारे एक बड़ी सी करोटन झील पर वह और उसके दो एक साथी स्कूल के समय के पश्चात् 'कान पत्ता' खेला करते थे, अब वह जगह बिल्कुल सूनी पड़ी रहती थी, समीप बैठे हुए एक साधु जिनकी कुटिया में बच्चे अपने बस्ते रख देते थे, कभी-कभी चरस का एक लम्बा कश लगाते हुए पूछ लेते, 'बेटा! अब क्यों नहीं आते खेलने को?" और सुखनन्दन कहता, 'बाबू नाराज़ हो गया है बाबा।" फिर महात्मा जी हँसते और चरस का एक दम उलटा देने वाला कश लगाते और खाँसते हुए कहते—

"ऊँ हूँ... हूँ ...... वाह रे पट्ठे ... आखिर बाबू जो हुआ तू!"

उस समय सुखनन्दन अभिमान से कहता, 'अकड़ता है बाबू अकड़ा करे ... उसकी औक़ात क्या है धोबी के बच्चे की?"

परन्तु बच्चों को अपने साथ खेलने के लिए कोई न कोई चाहिए, खेल में किसी तरह की जाति-पाँति और दर्जे का भेद-भाव नहीं रहता—वास्तव में कुछ वर्षों की ही तो बात थी, जब कि वे एक साथ नंगे पैदा हुए थे और उस समय तक उनमें निर्धन, लखपति, महाब्राह्मण, भनोट, हरिजन—और इसी प्रकार की व्यर्थ बातों के सम्बन्ध में बिचार करने की योग्यता पैदा नहीं हुई थी।

सुखनन्दन अपने सब कृत्रिम बड़प्पन को केंचली की तरह उतार बाबू के घर गया। बाबू उस समय दिन भर काम करके थक कर सो रहा था। माँ ने झिंझोड़ कर जगाया, बोली, "उठो बेटा ..."

अब खेलने कभी न जाओगे क्या ? सुखी आया है।" बावू आँखें मलता हुआ उठा, चारपाई के नीचे उसने बहुत से मैले-कुचैले और उजले उजले कपड़े देखे, कपड़े जो जन्म ही से सुखनन्दन और बावू में एक भेद-भाव उत्पन्न कर देते हैं ···बावू चारपाई से फर्श पर बिखरे हुए कपड़ों पर कूद पड़ा, मन में एक हलकी गुदगुदी सी पैदा हुई—कई दिनों से वह खेला न था और अब शायद अपने मिथ्याभिमान पर पछता रहा था। बावू का जी चाहता था कि फलांग कर बरामदे के बाहर चला जाए और सुखी को गले लगा ले और क्या मनुष्य का मनुष्य के लिए प्रेम कपड़ों की सीमा पार नहीं कर जाता ? क्या सुखी केंचली नहीं उतार आया था ? बावू चाहता था कि दोनों भाई रहे सहे कपड़े उतार कर एक हो जाएँ और खूब खेलें खूब ··· । बरामदे में कबूतरों के खुड्डे के पीछे जाली के बीच बावू की दृष्टि सुखी पर पड़ी, जो आशाभरी दृष्टि उसके घर के द्वार पर लगाये खड़ा था। एकाएक बावू को सुखी के जन्म-दिन की बात याद आ गई। वह मन मसोस कर रह गया, कबूतरों की जाली में उसे बहुत सी बीठें नज़र आ रही थीं और बहुत से सिराज, लक्का और देसी किस्म के कबूतर 'घूँ-घूँ' करते हुए गर्दनों को फुला रहे थे। एक नर फूल फूल कर मादा को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, बावू ने भी अपनी गर्दन को फुला लिया और घूँ घूँ की सी आवाज़ पैदा करता हुआ चारपाई पर वापिस जा लेटा, फिर उसे ख्याल आया, सुखी धूप में खड़ा जल रहा है, परन्तु वह फिर एक निश्चयात्मक भाव से चारपाई पर आँखें बन्द करके लेट गया। आख़िर वह भी तो कितनी ही देर घर के आँगन में बरसात की चिलचलाती धूप में खड़ा रहा था और उसने उसकी कोई परवाह न की थी ··अमीर होगा तो अपने घर में। "इसे कह दो ··

वह नहीं आएगा माँ। कहो उसे फुर्सत नहीं है फुर्सत।" बाबू ने कहा।

'शर्म तो नहीं आती तुझे', माँ ने कहा—"इतने बड़े सेठों का लड़का आवे तुझे बुलाने के लिए" और तू इस तरह पड़ रहे ..... गधा!" बाबू ने कोहनियाँ हिलाते हुए कहा "मैं नहीं जाने का, माँ।"

माँ ने बुरा भला कहा, तो बाबू बोला, "सच सच कह दूँगा, मैं जानता हूँ, मेरी किसी को भी ज़रूरत नहीं .....बाबेला करोगी तो मैं कहीं चला जाऊँगा।"

माँ का मुँह खुला का खुला रह गया, उस समय नन्ही ऊँची आवाज़ से रोने लगी और माँ उसे दूध पिलाने में व्यस्त हो गई।

बुधई के पुरवा में शीतला का ज़ोर था, पुरवा की स्त्रियाँ बंदरियों की भाँति अपने अपने बच्चों को कलेजों से लगाए फिरती थीं, पड़ोसन की देहलीज तक नहीं फांदती थीं, कहीं वू न पकड़ लें और शीतला माता तो वैसे भी बड़ी क्रोधी हैं। डालचन्द की लड़की, महाब्राह्मण के दो भतीजे सब को शीतला माता ने दर्शन दिया। उनकी माताएँ घण्टों उनके सिरहाने बैठकर स्वच्छ मोतिया के हार रख कर गौरी मैया गाती रहीं और देवी माता से प्रार्थना करती रहीं कि उन पर अपना कोप न निकालें, और जब बच्चे नीरोग हो जाते तो मन्दिर में पूजा के लिए ले जातीं। माता तो प्रत्येक अभिलाषा को पूर्ण करती थीं। जब शीतला का कोप टला और वू कुछ कम हुई तो पुरवा वालों ने शीतला की मूर्ति बनवाई, उसे खूब सजाया। सुखनन्दन के पिता ने मूँगे की माला शीतला माता के गले में डाली। सब ने मिल कर आदर-सम्मान से माता को मन्दिर से निकाला और एक सजी हुई बहली में विराजमान

किया और बहली को घसीटते हुए गाँव से बाहर छोड़ने के लिए गए। पुरवा के सब वृद्ध बच्चे जलूस में सम्मिलित हुए, पीतल की खड़तालें, ढोल, ढमके बजते जा रहे थे। लोग चाहते थे कि क्रोधी माता को हरिया के तालाव के पास महात्मा जी की कुटिया के निकट उन्हीं की रखवाली में छोड़ दिया जाय ताकि माता इस गाँव से किसी दूसरे गाँव को प्रस्थान करें। वे माता को प्रसन्नता से विदा करना चाहते थे जिससे कि उन पर उलटी न बरस पड़े। सुखी भी जलूस के साथ गया, बावू भी शामिल हुआ। न बावू को सुखी के बुलाने का साहस हुआ न सुखी को बावू को बुलाने का। हाँ, कभी भी वे कनखियों से एक दूसरे को देख लेते।

हरिया के तालाब के पास ही धोबी घाट था, एक छोटी सी नहर द्वारा तालाब का पानी घाट की ओर खींच लिया जाता था। घाट था बहुत लम्बा-चौड़ा, पास के क़स्बों में से धोबी कपड़े ले आया करते थे, उसी घाट पर बावू और उसके भाईबन्द, बाप-दादा वही एक पुराना गाना उसी पुराने सुर-ताल से गाते हुए कपड़े धोए जाते। एक दिन घाट पर सारे दिन बावू सुखी के बिना घोर एकाकीपन अनुभव करता रहा। कभी कभी अकेला ही करोटन बील के बल खाते हुए तनों पर चढ़ जाता और उतर आता जैसे सुखी के साथ कान-पत्ता खेल रहा हो, खेल में आनन्द नहीं आया तो वह ईंटों के ढेर में रक्खी हुई शीतला माता की मूर्ति को देखने लगा, और पूछने लगा कि वे इस गाँव से चली गई हैं या नहीं। माता कुछ क्रुद्ध दिखाई देती थीं। सन्ध्या को बावू घर आया तो उसे हलका हलका ज्वर था। बावू को अपनी सुध-बुध न रही, एक बार बावू को होश आया तो देखा, माँ ने मोतिया का एक हार उसकी चारपाई पर रक्खा था, पास ही ठंडे पानी से भरा हुआ

कोरा घड़ा था, घड़े के मुँह पर भी मोतिया के हार पड़े थे और माँ एक नया खरीदा हुआ पङ्खा हल्के हल्के हिला हिला कर मुँह में गौरी मैया गुनगुना रही थीं। पङ्खा मरते हुए रोगी की नाड़ी की तरह धीरे धीरे हिल रहा था और अलगनी पर लाल फुल्कारियों के पर्दे बाबू की बूढ़ी दादी की झुर्रियों की तरह लटक रहे थे और यह सामान सब कुछ माता के सम्मान के कारण किया गया था। बाबू ने अपनी पलकों पर मनों बोझ अनुभव किया। उसके सारे शरीर में काँटे चुभ रहे थे और इस तरह लगता था जैसे उसे किसी भट्ठी में झोंक दिया गया हो।

दो तीन दिन तो बाबू ने पासा न पलटा। एक दिन ज़रा सा आराम हुआ केवल इतना कि वह आँखें खोलकर देख सकता था। आँख खुली तो उसने देखा, सुखी और उसकी माँ दरवाजे के पास बैठे हुए थे। सेठानी ने नाक पर दुपट्टा ले रक्खा था। वास्तव में वे द्वार में इसलिए बैठे हुए थे कि कहीं बू न पकड़ ले, पर बाबू ने समझा आज इन लोगों का दर्प टूटा है, अपने मन में एक प्रसन्नता की लहर अनुभव की। एक ज्योतिषी जी साधुराम को बहुत सी बातें बता रहे थे। उन्होंने नारियल, बताशे, खिमनी मँगाई। साधु राम यदा-कदा अपना हाथ बाबू के तपते हुए मस्तक पर रख देता और कहता—"बाबू ...ओ बाबू... बेटा बाबू।"

उत्तर न मिलता तो एक मुक्का सा उसके कलेजे में लगता और वह गुम हो जाता। बाबू ने बड़ी कठिनाई से काँटों के बिस्तर पर पासा पलटा, फूल हाथ से सरका कर सिरहाने की ओर रख दिए, गले में तल्खी सी अनुभव की, हाथ बढ़ाया तो माँ ने पानी दिया। बाबू ने देखा, उसके एक ओर गेहूँ का ढेर लगा हुआ था। ज्योतिषी जी के कहने पर माँ ने उसे धीरे से उठाया और एक ओर

लटकते हुए तराज़ू के पलड़े में रख दिया। तराज़ू के दूसरे पलड़े में गेहूँ और दूसरे अनाज डालने शुरू किए। बाबू ने अपने को तुलते हुए देखा तो मन में एक विशेष प्रकार का आन्तरिक संतोष अनुभव किया। चार दिन के बाद आज उसने पहली बार कुछ कहने के लिए ज़बान खोली और इतना कहा, "माँ .... कुछ गेहूँ और उड़द की दाल दे दो, सुखी की माँ को .... कब से बैठी है बेचारी।"

साधुराम ने फिर अपना हाथ बाबू के तपते हुए माथे पर रख दिया. उसकी आँखों से कुछ अश्रु-बिन्दु गिर कर फर्श पर बिखरे हुए कपड़ों में समा गए, साधुराम ने कपड़ों को एक ओर हटा दिया और बोला "पंडित जी .... दान से बला टल जायगा। मैं तो घर बार बेच दूँ .... पंडित जी ..."

बाबू की माँ ने सिसकियाँ लेते हुए सेठानी जी को कहा, "मलिकिन कल नैनीताल जाऊँगी? ... कल नहीं तो परसों मिलेंगे कपड़े हाय मालकिन। तुम्हें कपड़ों की पड़ी है।" बाबू को कुछ संदेह सा हुआ. उसने फिर कष्ट से पासा बदला और बोला-माँ ... माँ ... आज मेरा जन्म दिन है?"

अब साधुराम के सोते फूट पड़े। एक हाथ से गला को दबाते हुए भर्राई हुई आवाज़ में बोला, "हाँ बाबू बेटा ... आज जन्मदिन है तेरा बाबू ...बेटा।

बाबू ने अपने जलते हुए शरीर और आत्मा पर से सब कपड़े उतार दिए जैसे नंगा होकर सुखी हो गया और मानों बोझ अनुभव करते हुए आँखें धीरे-धीरे बन्द करलीं।

— — — —

गरम कोट

मैंने देखा है, मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान पर बहुत से बढ़िया-बढ़िया सूट लटके रहते हैं, उन्हें देखकर बहुधा मेरे मन में विचार उत्पन्न होता है कि मेरा अपना गरम कोट बिल्कुल फट गया है और इस वर्ष हाथ तंग होने पर भी मुझे एक नया गरम कोट ज़रूर सिलवा लेना चाहिए। टेलर मास्टर की दुकान के सामने से निकलना या अपने दफ़्तर के मनोरंजन-क्लब में जाना छोड़ दूं तो संभव है मुझे गरम कोट का ख्याल भी न आये, क्योंकि क्लब में जब संतासिंह और यज़दानी के कोटों के नफ़ीस वरस्टेड मेरी कल्पना को चोट लगाते हैं तो मैं अपने कोट के पुरानेपन को बुरी तरह अनुभव करने लग जाता हूँ।

बीबी बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिये मुझ जैसे साधारण क्लर्क को अपनी बहुत सी आवश्यकताएँ छोड़नी पड़ती हैं, और उन्हें जिगर तक पहुँचती सर्दी से बचाने के लिए स्वयं मोटा झोटा पहनना पड़ता है। यह गरम कोट मैंने गत वर्ष देहली दरवाज़े से बाहर पुराने कोटों की एक दुकान से मोल लिया था। कोटों के व्यापारी ने पुराने कोटों की सैंकड़ों गाँठें किसी 'मराज्ञा, मराज्ञा एण्ड कम्पनी' कराची से मँगवाई थीं। मेरे कोट में नक़ली सिल्क के अस्तर से बनी हुई भीतरी जेब के नीचे 'मराज्ञा मराज्ञा एण्ड को' का लेबल लगा हुआ था, मगर कोट मुझे मिला बहुत सस्ता, महँगा रोए एक बार सस्ता रोए बार-बार ·····और मेरा कोट सदा फटा ही रहता था।

इसी दिसम्बर की एक संध्या को मनोरञ्जन क्लब से लौटते हुए मैं जान बूझ कर अनारकली में से निकला, उस समय मेरी जेब में दस रुपये का नोट था, आटा, दाल, ईंधन, बिजली, बीमा कम्पनी के बिल चुका देने पर मेरे पास वही दस का नोट बच रहा था......। जेब में दाम हो तो अनारकली में से गुज़रना बुरा नहीं, उस समय अपने आप पर क्रोध भी नहीं आता, बल्कि अपना व्यक्तित्व कुछ भला भला प्रतीत होता है। इस समय अनारकली में चारों ओर सूट ही सूट नज़र आ रहे थे और साड़ियाँ। कुछ वर्षों से हर नत्थू खैरा सूट पहनने लगा है......मैंने सुना है गत वर्षों में कई टन सोना हमारे देश से चला गया है। संभवतः इसीलिए लोग शरीर की सजावट का ध्यान भी बहुत अधिक रखते हैं, नए नए सूट पहनना और खूब ठाट से रहना हमारी निर्धनता का ही प्रमाण है, नहीं तो जो लोग वास्तव में धनी हैं ऐसी तड़क भड़क और दिखावे की कोई परवाह नहीं करते।

कपड़े की दूकान में वरस्टेड थान खुले पड़े थे, इन्हें देखते हुए मैंने कहा, क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपयों में से कोट का कपड़ा खरीद कर बीबी बच्चों को भूखा मारूँ? लेकिन कुछ समय पश्चात् मेरे हृदय में नए कोट के अपवित्र विचार की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। मैं अपने पुराने कोट का बटन पकड़ उसे बल देने लगा, चूंकि तेज़-तेज़ चलने से मेरे शरीर में गरमी आगई थी, इस लिए मौसम की सर्दी और इसी प्रकार के बाह्य प्रभाव मेरे कोट खरीदने की इच्छा को पूर्णता तक पहुँचाने में असमर्थ रहे। मुझे तो उस समय अपना वह कोट भी बिल्कुल तकल्लुफ़ (दिखावा) प्रतीत होने लगा।

ऐसा क्यों हुआ ? मैंने कहा है जो व्यक्ति वास्तव में धनी हों वे दिखावे की तड़क भड़क की बिल्कुल चिन्ता नहीं करें। जो लोग सचमुच धनी हों उन्हें तो फटा हुआ कोट बल्कि कमीज़ भी दिखावट में ही समझनी चाहिए, तो क्या मैं वास्तव में धनी था कि ?

मैंने घबरा कर अपनी समीक्षा करनी छोड़ दी और कठिनाई से दस का नोट सुरक्षित लिए घर पहुँच गया।

शमी—मेरी पत्नी—मेरी प्रतीक्षा में थी।

आटा गूँधते हुए उसने आग फूँकनी शुरू कर दी—कम्बख्त—मंगलसिंह ने इस बार लकड़ियाँ गीली भेजी थीं। आग जलने का नाम ही न लेती थी, अधिक फूँकने से गीली लकड़ियों में से और भी धुआँ उठा, शमी की आँखें लाल अंगारा हो गईं। उनसे पानी बहने लगा।

"कम्बख्त कहीं का ... मंगलसिंह" मैंने कहा इन जल-भरी आँखों के लिए मंगलसिंह तो क्या मैं समस्त संसार से युद्ध करने पर उतारू हूँ ... "

बहुत ऊहापोह के अनन्तर लकड़ियाँ धीरे-धीरे चटखने लगीं—अन्त में इन जल-भरी आँखों ने मेरे क्रोध की आग बुझा दी ... शमी ने मेरे कंधे पर सिर रक्खा और मेरे फटे हुए कोट में पतली पतली उँगलियाँ डालती हुई बोली—

"अब तो यह बिल्कुल काम का नहीं रहा।"

मैंने धीमी आवाज़ से कहा, "हाँ"

"सी दूँ ? ... यहाँ से ... "

"सी दो, अगर कोई एकाध तार निकाल कर रफू कर दो तो क्या कहने हैं।"

कोट को उल्टाते हुए शमी बोली, "अस्तर को तो मुई किसारी चाट रही है......नकली रेशम का है न ..... यह देखिये।"

मैंने शमी से अपना कोट छीन लिया, और कहा, "मशीन के पास बैठने के बजाय तुम मेरे पास बैठो, शमी देखती नहीं हो दफ़्तर से आ रहा हूँ .... यह काम तुम उस वक्त कर लेना जब मैं सो जाऊँ।"

शमी मुस्कराने लगी।

वह शमी की मुस्कराहट और मेरा फटा हुआ कोट !

शमी ने कोट को यूँ ही एक ओर रख दिया, बोली "मैं आप भी इस कोट की मरम्मत करते थक गई हूँ। ...इसे मरम्मत करने में उस गीले ईंधन की तरह जान मारनी पड़ती है, आँखें दुखने लगती हैं, आखिर आप अपने कोट के लिए कपड़ा क्यों नहीं खरीदते ?

मैं कुछ देर सोचता रहा।

यूँ तो मैं अपने कोट के लिए कपड़ा ख़रीदना गुनाह ख्याल करता था, पर शमी की आँखें। उन आँखों को कष्ट से बचाने के लिए मैं मंगलसिंह तो क्या सारे संसार से लड़ने पर उतारू हो जाऊँ, वरस्टेड के थानों के थान खरीद लूँ।

नए गरम कोट के लिए कपड़ा ख़रीदने का विचार मन में पैदा हुआ ही था कि पुष्पा मुन्नी भागती हुई कहीं से आ गई, आते ही बरामदे में नाचने और गाने लगी—उसकी चेष्टाएँ कथाकली मुद्रा से अधिक मधुर थीं।

मुझे देखते हुए पुष्पा मुन्नी ने अपना नृत्य और गान समाप्त कर दिया, बोली—

"बाबू जी"'आप आगए ? आज बड़ी बहिन जी ने कहा था कि मेज़पोश के लिए दोसूती लाना और गरम कपड़े पर काट सिखाई जायगी, गुनिया माप के लिए और गरम कपड़ा" क्योंकि उस समय मेरे गरम कोट की बात हो रही थी। शमी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगाई और बोली—

"इस जन्म जली को हर वक्त' 'हर वक्त कुछ न कुछ खरीदना ही होता है'''''मुश्किल से इन्हें कोट सिलवाने पर राज़ी कर रही हूँ।"

वह पुष्पा मुन्नी का रोना और मेरा कोट !

मैंने स्वभाव के विरुद्ध ऊँची आवाज़ से कहा—"शमी"। शमी काँप गई। मैंने क्रोध से आँखें लाल करते हुए कहा, "मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो''''''अभी''''''किसी तरह करो''''''ऐसे जैसे रो पीट कर मंगलसिंह की गीली लकड़ियाँ जला लेती हो'''''' तुम्हारी आँखें ! हाँ ! याद आया''''' देखो तो पुष्पा मुन्नो कैसे रो रही है—पोपी बेटा ! इधर आओ न''''''इधर आओ मेरी बची— क्या कहा था तुमने ? बोलो तो'''''''''''दोसूती ? गुनिया माप के लिए और काट सीखने के लिए गरम कपड़ा ?—बच्चू नन्हा भी तो ट्राईसिकल का राग अलापता और गुब्बारे के लिए मचलता सो गया होगा, उसे गुब्बारा न ले दोगी तो मेरा गरम कोट सिल जायगा—है न''''''कितना रोया होगा बेचारा''''''' शमी ! कहाँ है बच्चू ?"

"जी सो रहा है" '''' शमी ने सहमे हुए उत्तर दिया।

"अगर तुम मेरे गरम कोट के लिए इन निरीह बचों से ऐसा व्यवहार करोगी तो मुझे तुम्हारी आँखों की परवाह ही क्या है ?

फिर मैंने मन में कहा, क्या यह सब कुछ मेरे गरम कोट के लिए हो रहा है। शमो सच्ची है या मैं सच्चा हूँ? पहले मैंने कहा—दोनों, परन्तु जो सचा होता है उसका हाथ ऊपर रहता है। मैंने आपही दबते हुए कहा—

"तुम आप भी तो उस दिन काफूरी रङ्ग के मीनाकार काँटों के लिए कह रही थीं ... "

"हाँ ..जी...कह तो रही थी परन्तु ..."

परन्तु ....परन्तु इस वक्त तो मुझे अपने गरम कोट की जेब में दस रुपये का नोट एक बड़ा भारी खज़ाना मालूम हो रहा था।

दूसरे दिन शमी ने मेरा कोट कुहनियों पर से रफू कर दिया, एक जगह जहाँ पर से कपड़ा बिलकुल उड़ गया था सफ़ाई और बड़ी सतर्कता से काम लेने पर भी सिलाई पर कुरूप सी सलवटें पड़ने लगीं—इस समय मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दूकान मेरे मस्तिष्क में घूमने लगी। और यह मेरी कल्पना की दृढ़ता थी। मेरी कल्पना की दृढ़ता बहुधा मुझे मुसीबत में डाले रखती है। मैंने मन में कहा, 'मेराजुद्दीन की दुकान पर ऐसे सूट भी तो होते हैं जिनमें सिलाई समेत सौ रुपये से भी अधिक लागत आती है...... मैं एक साधारण क्लर्क हूँ। उसकी दुकान पर लटके हुए सूटों का ध्यान करना व्यर्थ है .....व्यर्थ......"

मुझे फ़ुर्सत में पाकर शमी मेरे पास आ बैठी और हम दोनों खरीदी जाने वाली वस्तुओं की सूची बनाने लगे ....। जब माता-पिता एकत्र होते हैं तो बच्चे भी आ जाते हैं ....पुष्पा मुन्नी और बच्चू भी आ गए, आँधी और वर्षा की भाँति कोलाहल करते हुए ..

शमी को प्रसन्न करने के लिए नहीं बल्कि यूँ ही मैंने काफूरी रङ्ग के मीनाकार काँटे सबसे पहिले लिखे। एकाएक रसोई की

ओर मेरी नजर उठी—चूल्हे में लकड़ियाँ धड़धड़ जल रही थीं ····· और इधर शमी की आँखें भी दो चमकते हुए सितारों की तरह उज्ज्वल थीं —मालूम हुआ कि मंगलसिंह गीली लकड़ियाँ वापिस ले गया है।

"वे शहतूत के डंडे जल रहे हैं और खोखा"·········शमी ने कहा।

"और उपले ?"

"जी हाँ उपले भी ···"

"मंगलसिंह देवता है ·· शायद मैं भी शीघ्र ही गरम कोट के लिए अच्छा सा वरस्टेड खरीद लूँ ताकि तुम्हारी आँखें यूँ ही चमकती रहें, इन्हें कष्ट न हो—इस महीने के वेतन में तो गुञ्जायश नहीं, अगले महीने ज़रूर ···· जरूर "

"जी हाँ, जब सर्दी बीत जायगी ·····"

पुष्पा मुन्नी ने कई चीजें लिखाईं, दोसूती, गुनिया माप के लिए, गरम ब्लेजर सब्ज रङ्ग का एक वर्ग गज, डी. एम. सी. के गोले, गोटे की मग़ज़ी—और अमरतियाँ और बहुत से गुलाब जामुन ·····मुई ने सब कुछ ही तो लिखवा दिया। मुझे स्थायी क़ब्ज थी, मैं चाहता था यूनानी दवाघर से अत्रिफ़ल ज़मानी का एक डिब्बा ला रखूँ—दूध के साथ थोड़ा सा पीकर सो जाया करूँ, मगर मुई पुष्पा ने उसके लिए गुञ्जाइश ही नहीं रखी थी और जब पुष्पा मुन्नी ने कहा 'गुलाब जामुन' तो उसके मुँह में पानी भर आया। मैंने कहा सबसे ज़रूरी चीज़ तो यही है।

शहर से वापिस आने पर मैं गुलाब जामुन वहाँ छुपा दूँगा जहाँ सीढ़ियों में बाहिर जमादार अपना दूध का कलश रख दिया करता है और पुष्पा मुन्नी से कहूँगा कि मैं तो लाना ही भूल गया,

तुम्हारे लिए गुलाबजामुन ····ओ हो···· उस समय उसके मुँह में फिर पानी भर आएगा और गुलाबजामुन न पाकर उसकी अजीब दशा होगी।

फिर मैंने सोचा, बच्चू भी तो प्रातः से गुब्बारे और ट्राईसिकिल के लिए ज़िद कर रहा था। मैंने अपने आप से प्रश्न किया—'अत्रि-फलज़माली ?' शमी बच्चू को पुचकारते हुए कह रही थी, 'बच्चू बेटी को ट्राईसिकल ले दूँगी, अगले महीने···· ·बच्चू बेटी सारे दिन चलाया करेगी, ट्राईसिकिल··· पोपी मुन्ना कुछ नहीं लेगा··· बच्चू चलाया करेगी और पोपी मुन्ना नहीं लेगा।"

और मैंने शमी की आँखों की सौगन्ध खाई कि जब तक ट्राई-सिकिल के लिए छै सात रुपये जेब में न हों मैं नीलेगुम्बद के बाज़ार से नहीं गुजरूँगा—इसलिए कि दाम न होने की दशा में नीले गुम्बद से निकलना बहुत कष्टकर है। अनायास अपने आप पर क्रोध आएगा—अपने आपसे घृणा होगी।

उस समय शमी बेल्जियम दर्पण की गोलाकार टुकड़ी के सामने अपने कर्पूर से गौर सूटमें खड़ी थी। मैं चुपके से उसके पीछे जा खड़ा हुआ और कहने लगा 'मैं बताऊँ तुम इस वक्त क्या सोच रही हो ?

"बताओ तो जानूँ "

"तुम कह रही हो, कर्पूर से श्वेत सूट के साथ वह काफूरी रङ्ग के मीनाकार काँटे पहन कर ज़िलेदार की पत्नी के घर जाऊँ तो दंग रह जाए······"

"नहीं तो" शमी ने हँसते हुए कहा, "आप मेरी आँखों की प्रशंसा करते हैं। मैंने कहा देखूँ, तो इनमें क्या धरा है। सच्ची बात तो यह है कि यदि आप सचमुच मेरी आँखों के प्रशंसक होते तो कभी का गरम······"

मैंने शमी के मुँह पर हाथ रख दिया। मेरी सारी प्रसन्नता निराशा में बदल गई, मैंने धीरे से कहा, "बस इधर देखो ..... अगले महीने ज़रूर खरीद लूँगा "

"जी हाँ, जब सर्दी .. "

फिर मैं अपनी इस सुन्दर दुनिया को—जिसकी रचना पर केवल दस रुपये खर्च हुए थे—कल्पना में बसाए बाज़ार चला गया।

\+ \+ \+ \+

मेरे अतिरिक्त अनारकली में से गुजरने वाले प्रत्येक भद्र पुरुष ने गरम सूट पहन रक्खा था। लाहौर के एक मोटे-ताजे जैन्टलमैन की गर्दन नकटाई और सजे हुए कॉलर के कारण मेरे छोटे भाई के पालतू बुली कुत्ते 'टाइगर' की गर्दन की तरह अकड़ी हुई थी। मैंने इन सूटों की ओर देखते हुए कहा।

"लोग वास्तव में बड़े निर्धन हो गए हैं। इस महीने न जाने कितना सोना चाँदी हमारे देश से बाहर चला गया है।" काँटों की दूकान पर मैंने कई जोड़ियाँ काँटे देखे उन्हें अपनी कल्पना की दृढ़ता से मैं शमी के कपूर से सफेद सूट से विभूषित मानसिक चित्र को पहना कर पसन्द या नापसन्द कर लेता। कपूर से सफ़ेद सूट ..... काँटे—कर्पूर वर्ण मीनाकारी काँटे। अगनित प्रकार के जोड़ों के कारण इनमें से एक भी चुन न सका।

उस समय बाजार में मुझे यज़दानी मिल गया। वह मनोरञ्जन-क्लब से जो वस्तुतः परेल क्लब थी पन्द्रह रुपए जीत कर आया था, उसके चेहरे पर यदि हर्ष और लाली की लहरें दिखाई देती थीं तो कुछ आश्चर्य की बात न थी। मैं एक हाथ से अपनी जेब की सलवटों को छुपाने लगा, निचली बाईं जेब पर एक रुपये के बराबर कोट से मिलते हुए रङ्ग का पेवंद बहुत ही बेमेल दिखाई दे

रहा था ...मैं उसे भी एक हाथ से छुपाता रहा, फिर मैंने दिल में कहा, क्या आश्चर्य जो यज़दानी ने मेरे कंधे पर हाथ रखने से पूर्व मेरी जेब पर की सलवटें और वह रुपए बराबर कोट के रङ्ग का पेवन्द देख लिया हो .....इसकी भी प्रतिक्रिया शुरू हुई और मैंने दिल ही में कहा—

"मुझे क्या परवा है......यज़दानी मुझे कौन सी थैली बख्श देगा .... और इसमें बात ही क्या है? यज़दानी और संतसिंह ने कई बार मुझसे कहा है कि वे मानसिक उन्नति की अधिक परवा करते हैं और वरस्टेड की कम।"

मुझसे कोई पूछे—मैं वरस्टेड की अधिक परवा करता हूँ और मानसिक उन्नति की कम!

यज़दानी चला गया और जब तक वह दृष्टि से ओझल न हो गया मैं ध्यान से उसके कोट के उत्तम वरस्टेड को पीठ की ओर से देखता रहा।

फिर मैंने सोचा कि मुझे सबसे पहले पुष्पा मुन्नी के लिए गुलाब जामुन और अमरतियाँ खरीदनी चाहिए, कहीं वापिसी पर सचमुच भूल ही न जाऊँ। घर पहुँच कर इन्हें छुपाने से खूब तमाशा रहेगा।

मिठाई की दूकान पर खौलते हुए घी में कचोरियाँ खूब फूल रही थीं—मेरे मुँह में पानी भर आया, उसी तरह जिस तरह गुलाब जामुन के ख्याल से पुष्पा मुन्नी के मुँह में पानी भर आया था। क़ब्ज और अत्रिफल ज़मानी के होते हुए भी सफ़ेद पत्थर की मेज पर कोहनियाँ टिकाकर बड़े आनन्द से कचौरियाँ खाने लगा... .।

हाथ धोने के बाद जब पैसों के लिए जेब टटोली तो उसमें

कुछ न था—दस का नोट कहीं गिर गया था।

\+ + + +

कोट की भीतरी जेब में एक बड़ा सा छेद हो रहा था, नक़ली रेशम को टिड्डियाँ चाट गई थी। जेब में हाथ डालने पर, उस जगह जहाँ मराज्ञा मराज्ञा एण्ड को का लेबल लगा हुआ था, मेरा हाथ बाहर निकल आया. नोट वहीं से बाहर गिर गया होगा।

एक दशा में मैं यूं दिखाई देने लगा जैसे कोई भोली सी भेड़ अपनी सुन्दर सी पशम उतर जाने पर दिखाई देने लगती है।

हलवाई भाँप गया—आप ही बोला।

"कोई बात नहीं, बाबू जी······पैसे कल आ जायँगे।"

मैं कुछ न बोला ····· कुछ बोल ही न सका। केवल कृतज्ञता प्रदर्शन के लिए मैंने हलवाई की ओर देखा। हलवाई के पास ही गुलाबजामुन चाशनी में डूबे पड़े थे, घी में फूलती हुई कचौरियों के धूएँ में से सुर्ख़ अमरतियाँ जिगर पर दाग लगा रही थीं ····· और मस्तिष्क में पुष्पा मुन्नी की तस्वीर फिर गई।

मैं वहाँ से बादामी बाग़ की ओर चल दिया, और आध पौन घंटे के लगभग बादामी बाग़ की रेलवे लाइन के साथ साथ चलता रहा। इतने समय में जङ्क्शन की ओर से एक मालगाड़ी आई, उसके पाँच मिनट बाद एक शंट करता हुआ इञ्जन जिसमें से दहकते हुए कोयले लाइन पर गिर रहे थे—परन्तु उस समय पास ही की माल्ट रिफ़ाइनरी में से बहुत से मज़दूर ओवर टाइम लगा कर वापिस लौट रहे थे। मैं लाइन के साथ साथ दरया के पुल की ओर चल दिया। चाँदनी रात में सर्दी होने पर भी कालेज के कुछ मनचले नवयुवक किश्ती चला रहे थे।

"भाग्य ने खूब सज़ा दी है मुझे" मैंने कहा, 'पुष्पा मुन्नी के लिए गोटे की मग्ज़ी, दोसूती, गुलाबजामुन और शमी के लिए

काफ़ूरी मीनाकार कोटे ख़रीदने से बढ़कर भी कोई गुनाह किया जा सकता है—किस बेरहमी और बेदर्दी से मेरी एक सुन्दर या बहुत सस्ती दुनिया बरबाद कर दी गई है · जी तो चाहता है मैं भी प्रकृति की एक रचना को तोड़ फोड़ के रख दूँ—परन्तु पानी में खेवट का बालक कह रहा था—इस मौसम में रावी का पानी घुटने घुटने से अधिक कहीं नहीं होता।"

"सारा पानी तो ऊपर से अपर बारी दुआब ले लेता है...."

"और यूँ भी आज कल पहाड़ों पर बर्फ़ नहीं पिघलती ...." दूसरे ने कहा।

मैं विवश घर की ओर लौटा और बड़े बेमन से ज़ञ्जीर हिलाई। मेरी इच्छा के अनुरूप पुष्पा मुन्नी और बच्चू नन्हा बहुत देर हुई दहलीज़ पर से उठकर बिस्तरों में जा सोए थे। शमी चूल्हे के पास शहतूत के आधे जागृत कोयलों से तापती हुई कई बार ऊँघी और कई बार चौंकी थी। मुझे ख़ाली हाथ देखकर ठिठक गई, उसी के सामने मैंने चोर-जेब के अन्दर हाथ डाला और लेबल के नीचे से निकाल लिया—शमी सब कुछ समझ गई—वह कुछ न बोली⋯ कुछ बोल ही न सकी।

मैंने कोट खूँटी पर लटका दिया, मेरे पास ही दीवार का सहारा लेकर शमी बैठ गई और हम दोनों सोते हुए बच्चों और खूँटी पर लटकते हुए गरम कोट को देखने लगे।

यदि शमी ने मेरी प्रतीक्षा किए बिना वह काफ़ूरी सूट बदल दिया होता तो सम्भवतः मेरी दशा इतनी न बदलती।

\+ + + +

यज़दानी और सन्तासिंह मनोरञ्जन-क्लब में परेल खेल रहे थे,

उन्होंने दो दो तीन तीन घूँट पी भी रक्खी थी, मुझे भी पीने के लिए आग्रह करने लगे मगर मैंने इन्कार कर दिया, इसलिए कि मेरी जेब में पैसे न थे। संतासिंह ने एकाध घूँट मुझे भी पिला दिया, शायद इस लिए कि जान गए थे कि इसके पास पैसे नहीं हैं, या शायद इसलिए कि वे मानसिक प्रसन्नता को वरस्टेड से अधिक परवा करते थे।

यदि घर में उसी दिन शर्मा को वही कपूर सा सफेद सूट पहने हुए देखकर न आता तो शायद परेल में भाग्य-परीक्षा करने को मेरा जी भी न चाहता—मैंने कहा, कदाचित मेरी जेब में एक दो रुपये होते तो क्या आश्चर्य था कि मैं बहुत से रुपये बना लेता—परन्तु मेरी जेब में कुल पौने चार आने थे।

यज़दानी और संतासिंह बहुत बढ़िया वरस्टेड के सूट पहने नेक-आलम क्लब के सेक्रेटरी से झगड़ रहे थे। नेक आलम कह रहा था कि वह मनोरञ्जन क्लब को परेल-क्लब बनते हुए कभी नहीं देख सकता। उस समय मैंने एक निराश व्यक्ति के समान विशेष ढङ्ग से जेब में हाथ डाला और कहा 'बीबी बच्चों के लिए कुछ खरीदना प्रकृति की गणना में अपराध है, इस हिसाब से परेल खेलने के लिए तो उसे अपनी गिरह से दाम दे देने चाहिए—हो-हु। ...... ग्री-ग्री ......"

भीतरी खीसा, बाईं निचली जेब, कोट में पीठ की ओर मुझे कोई काग़ज़ सरकता हुआ प्रतीत हुआ, उसे सरकाते हुए ...... मैंने दाईं जेब के छेद के निकट जा निकाला।

वह दस रुपये का नोट था जो उस दिन भीतर की जेब की तह के छेद में से निकल कर भीतर ही भीतर गुम हो गया था।

उस दिन मैंने प्रकृति से बदला लिया—मैंने उसकी इच्छा के अनुसार परेल न खेला। नोट को मुट्ठी में दबाए घर की ओर भागा—यदि उस दिन मेरी प्रतीक्षा किए बिना शमी ने वह कपूर सा सफ़ेद सूट बदल दिया होता तो मैं प्रसन्नता से यूँ दीवाना कभी न होता।

हाँ फिर चलने लगा वही कल्पना का दौर मानों एक सुन्दर से सुन्दर संसार की रचना में दस रुपये से अधिक एक दमड़ी भी नहीं खर्च आती।

पुष्पा मुन्नी को भी मैंने गोद में ले लिया और कहा—"पोपी मुन्ना ·· आज गुलाब जामुन जी भर कर खाएगा न ······ ।"

उसके मुँह में पानी भर आया—वह गोदी मे उतर पड़ी, बोली, "ऐसा मालूम होता है ····जैसे एक बड़ा गुलाबजामुन खा रही हूँ।

बच्चू रोता रहा, पुष्पा मुन्नी कथाकली मुद्रा से अधिक आकर्षक नाच बरामदे में नाचती रही।

मुझे मेरी कल्पना की उड़ान से कौन रोक सकता था—कहीं मेरी कल्पना के क़िले ज़मीन पर न आ रहें—इसी डर से तो मैंने शमी को बाज़ार भेजा था। मैं सोच रहा था—शमी अब घोड़ा अस्पताल के निकट पहुँच चुकी होगी ··· अब गन्दे इञ्जन के पास ··· ।

और एक बहुत धीमें अंदाज से जञ्जीर हिली—शमी सचमुच आ गई थी दरवाज़े पर।

शमी अन्दर आते ही बोली—मैंने दो रुपए खेमो से उधार लेकर भी खर्च डाले—

"कोई बात नहीं" मैंने कहा।

फिर बच्चू, पोपी मुन्ना और मैं तीनों शमी के पीछे घूमने लगे, मगर शमी के हाथ में एक बंडल के अतिरिक्त और कुछ न था—उसने मेज़ पर बंडल खोला। वह मेरे कोट के लिए बहुत बढ़िया वरस्टेड था।

पुष्पा मुन्नी ने कहा "बीबी मेरे गुलाब जामन ......"

शमी ने जोर से एक चपत उसके मुँह पर लगा दी।

आलू

लखीसिंह साइक्लोस्टाइल के समीप बैठा सोच रहा था। उस समय न तो उसे भारत की आर्थिक दुर्दशा का ख्याल था और न भंगियों की हड़ताल के सम्बन्ध में व्यग्रता थी। आज संध्या को घर में पकाने के लिये क्या ले जाए, बस इसी बात ने उसे परेशान कर रखा था। घर में आँगन का तीन चौथाई भाग छोड़ कर शेष में बसन्ती ने 'पाम' और 'पाराक्रास' के अतिरिक्त बैंगन के पौदे लगा रक्खे थे लेकिन, अभी तो बैंगन के पौदों ने नीले-नीले ऊदे-ऊदे फूल ही निकाले थे, अभी तो इनमें अंकुरों की उत्पत्ति भी अच्छी तरह से नहीं हुई थी। ऐसी हालत में बैंगनों का विचार करना तो केवल एक मूर्खता की बात थी।

लखीसिंह शुरू ही से पौदे उगाने के विरुद्ध था जब कि बसन्तो घर में हरयावल को बहुत पसंद करती थी। सब्ज़ी आँखों को तरावट देती है। यह तो ठीक है, लेकिन लखीसिंह अत्यन्त अधीर मनुष्य था, वह चाहता था कि आज ही बीज बपन कर दिया जाय और आज ही फल लग आवें। भारत की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में भी उसका कुछ ऐसा ही विचार था। पौदों को नित्य पानी देना, इनकी रक्षा और, फिर इन्हें बहुत धीमी गति से बढ़ते देखना उसके धैर्य-शक्ति से परे की बात थी, तभी तो उसने बसन्तो को स्पष्ट कह दिया था कि पौदे उगाने के बाद मैं वल्गा चला जाऊँगा, वहाँ दो चार महीने रहूँगा ताकि मेरी वापिसी पर बैंगन फल रहे हों और यही लगे जैसे मैंने कल ही इन्हें बोया है और आज फल भी ले लिए हैं।

लखीसिंह ने उठकर चारों ओर देखा, सब कामरेड जा चुके थे, पर उसके कानों में उनकी कोलाहलपूर्ण बहस की गूँज बाकी थी। फिर उसे विचार आया, भंगियों की हड़ताल किस क़दर पूर्ण हुई है। नगर की तंग और अंधेरी गलियों घने मुहल्लों, मार्गों और सड़कों पर स्थान-स्थान पर कूड़े के ढेर लगे रहे हैं। शाहआलमी के बाहर घोड़ों के हौज़ के समीप गन्दे का पहाड़ पड़ा है। ठंडी सड़क की ओर जाने वाली सड़क पर तीन दिन से एक बैल मरा पड़ा है जिसकी लाश से सड़ांध उठ कर हस्पताल के रोगियों तक पहुँच रही है। उसके अगले कूचे भोलामिसर में जहाँ नगर के मुर्दे जलाने वाले अचारज रहते हैं इतनी दुर्गंध पैदा हो रही है कि अचारज बाहर नहीं निकलते और हिन्दू का मुर्दा बिना अचारज के कैसे जलाया जा सकता है? निश्चय ही बहुत से मुर्दे गली-मुहल्लों में पड़े दुर्गंध फैला रहे होंगे, ठंडी सड़क पर मृत बैल की तरह।

खिड़की में से एक तीव्र दुर्गंध आने से लखीसिंह उठा और उसने सब दरवाज़े बंद कर लिए। दाईं ओर घूमने पर उसकी दृष्टि साइक्लोस्टाइल के ऊपर एक खूँटी पर जा पड़ी। इस खूँटी पर कामरेड बख्शी का हैट टँगा रह गया था जिस के एक तरफ लाल परों का एक सुन्दर लोम लगा हुआ था। अन्त में बख्शी ने सरकारी नौकरी करली थी, अतः सब कामरेड मिल कर ब्राउनिंग की एक कविता, 'वह कुछ चाँदी के टुकड़ों के बदले हमें छोड़ गया' गाते रहे थे। बख्शी प्रतिक्रियावादी हो गया था। सब ने कामरेड से स्नेह किया था और अपने नेतृत्व के लिए उसकी ओर देखा था, उसके गीत गाये थे, उसके गल्पों की प्रशंसा की थी और अब? ···· लेकिन सौ रुपया मासिक पाने पर भी उसका चेहरा

इस प्रकार उतरा हुआ था। वह बार बार घबरा कर अपनी पतलून की क्रीज़ ठीक करता था और निरन्तर आँखें झपकाता था... प्रारंभ हुआ बहस में और नौबत हाथा पाई तक पहुँच गई थी और उसे पीटा भी गया था। उसकी कमीज़ का एक चिथड़ा अभी तक एक कुर्सी की उभरी हुई कील में अड़ा हुआ था। उसने पेट की मजबूरियोंकी चर्चा करके प्रत्येक व्यक्तिके करुणा-भाव को उकसाने का यत्न किया था परन्तु वहाँ सब की आँखों में घृणा थी। मालूम होता है इतने बड़े आदर्श से गिर जाने का उसे स्वयं भी भान था लेकिन वह एक सीमा तक मजबूर था। उसकी तीन बहनें थीं विवाह के योग्य, वृद्ध पिता डाक्टर जो कि किसी रियासत से रिटायर हुआ था और जिसकी दृष्टि अधिक सतर्कता के कारण मंद होगई थी। माँ के अतिरिक्त चार भाई थे, जिनमें से दो स्थानीय हाई स्कूल में और सब से बड़ा नगर से बाहर एक विद्यालय में शिक्षा पाता था और इन सब के उदर ईंधन माँगते थे। बख्शी ने प्रत्येक की आपत्ति का अलग अलग उत्तर देने का यत्न किया पर किसी ने उसकी एक न सुनी और पीटे जाने के पश्चात् शीघ्र ही वह कमरे से बाहर भाग गया और विकलता की दशा में अपना हैट भी वहीं छोड़ गया।

लखीसिंह ने कहा, कदाचित बख्शी का कोट टँगा रह जाता तो आज की रोटी से तो मुक्ति मिलती। फिर उसे बसन्तो का ख्याल आया और वह सोचने लगा, बसन्तो वास्तव में कामरेड है। इतनी गिरी दशा होने पर भी उसने आज तक मुझे यह विश्वास नहीं होने दिया कि मैं तुम जैसे दरिद्र पुरुष का साथ नहीं दे सकती। तंगी के दिनों में वह मैले कुचैले चीथड़े, बलगा से आए हुए गेहूँ की छान, एक अप्रसिद्ध सा पत्र जिसका लखीसिंह सम्पादक रहा था

उसकी रद्दी बेच कर कई दिन गुज़ार दिया करती थी। वह नाम की प्रतिष्ठा के विचार से कभी न डरी थी और अपने साम्यवादी पति पर बोझ प्रतीत न होने के लिए उसने पड़ोस के लोगों की कमीज़ें सीनी शुरू करदी थीं। एक बार उसने कौड़ियों के मूल्य मुहल्ले के सब लोगों से फटी हुई जुराबें खरीद लीं, उनके तार निकाले और उन्हें पापड़मंडी के एक जुराबों के कारखाने में बेच दिया। बसन्ती बड़ी उद्योगशील स्त्री थी और लखीसिंह संतुष्ट था।

लखीसिंह उठा और एक अँगड़ाई ली। वह कुछ थक सा गया था। इसके बाद वह हँसने लगा। हँसने के अतिरिक्त और वश भी तो न था और वह हँसी न प्रतिक्रिया की हँसी थी और न कोई दर्द था जो हद से गुज़र कर दवा हो गया था, वह एक निरर्थक सी खोखली हँसी थी जो कि एकाएक जेब में पैसे खत्म हो जाने से पैदा होती है, और ख्याल आता है—भई खूब रही, चलो बड़े देश-भक्त बनते थे, लेकिन एक कामरेड के जीवन में ऐसी घटनाएँ उपस्थित होती ही रहती हैं। वह रूस का मैक्सिम्लूश्च ....

और आखिर रोने से बनता ही क्या है। यह भी तो एक कारण है कि हँसा जाए और लखीसिंह धीरे-धीरे बैठक पर से उतरकर और परीमहल से निकल कर सरक्यूलर रोड की ओर चल दिया। बाज़ार में कुत्ते दहीबड़े के खाली पत्ते चाट रहे थे, एक छोटी सी लड़की का दूध से भरा सिकोरा बाज़ार में गिर कर टुकड़े टुकड़े हो गया था और सुरमई सड़क पर बिखरा हुआ दूध इतना भयानक दिखाई देता था जैसे अकाल के दिनों में गवर्नर के 'फ़्लावर शो' का कोई बड़ा सा क्राईसैन्थियम बाज़ार में रख दिया जाए… । लड़की भौंचक्की होकर सिकोरे के टुकड़े एकत्रित करने लगी जैसे इन्हीं टुकड़ों को समेट कर घर ले जायगी।

आकाश पर कॉटन मिल के धुएँ की एक लम्बी सी लकीर चैम्बरलेन रोड तक चली आई थी। यद्यपि गरमी का मौसम शुरू हो चुका था फिर भी वायु में शीतलता शेष थी और धुएँ के टुकड़े आकाश की श्वेत वर्णा नीलिमा के विपरीत धब्बों के रूप में चारों ओर बिखरे हुए थे। अचानक एक तीव्र सी दुर्गन्धि ने लखीसिंह को नाक पर रूमाल रखने को मजबूर कर दिया और वह सोचने लगा, कमेटी की ओर से इस मैले के निकास का सुप्रबन्ध नहीं, लोगों के घर गन्दगी से भरे पड़े हैं तो भी लोग एक पेट को आवश्यकता से अधिक खाए जाते हैं।

अब तक लखीसिंह सब्ज़ी मंडी केनिकट पहुँच चुका था। मंडी के दरवाजे, से कुछ छकड़े रीं-रीं करते हुए बाहर निकल रहे थे। उनके बैल गर्दन के पास जख्मी थे, इस पर भी न तो जोत को परे खिसकाया गया था और न ही लकड़ी के सख्त लट्ठे और इस पर सजावट के लिए लगाये हुए पीतल के कीलों के गिर्द कोई चीथड़ा लपेटा गया था . गाड़ीवान बैलों से बाँधकर उनके मालिकों और रखने वालों को गालियाँ दे रहे थे। ग्वालमंडी चौक को अकालियों के एक बड़े लम्बे चौड़े जलूस ने रोक रक्खा था। यह लोग सरगोधे में मोरचा लगाने के विषय में विचार कर रहे थे। लखीसिंह ने अकस्मात् अपना हाथ एक छकड़े के पीछे रखा तो उसके हाथ में एक आलू आ गया ....ये वे छकड़े थे जो कि प्रति दिन सवेरे सांदा शम्सुद्दीन की ओर से आलुओं की बोरियाँ लेकर सब्जी मंडी को आते और अपने विचार में सब आलू उँडेल कर अपने घर लौट जाते। फिर भी धुरे के पास या किसी गाँठ और ऊँच नीच में कोई न कोई आलू अटका रह जाता। लखीसिंह ने सब छकड़ों को पीछे से टटोल टटोल कर सेर भर के लगभग

आलू एकत्रित कर लिए और उसकी आँखों में पानी भर आया। वे आँसू न तो शोक के थे और न हर्ष के, बल्कि ऐसे ही शून्य में एक भाव, धैर्य और सन्तोष का प्रदर्शन, या वे आँसू ऐसे थे जो खाली जेब के एकाएक भर जाने से पैदा होते हैं।

लखीसिंह ने घर पहुँच कर सब आलू बसन्तो के सामने बखेर दिए। आज बसन्तो सन्ध्या से ही लखीसिंह की राह ताक रही थी, आज इस उद्योगशील स्त्री को भी कामरेड के आने से पूर्व कोई वस्तु पकाने की तरकीब नहीं सूझी थी। अकस्मात भीतर से लखी-सिंह का बड़ा लड़का करनैल आ उपस्थित हुआ और रसोई में बिखरे हुए आलुओं को हवा में उछालने लगा।। लखीसिंह ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगा दी और आलू समेट कर एक कोने में डाल दिये। वह नहीं चाहता था कि उसकी कमाई यूँ ही नष्ट की जाए और करनैल रोया नहीं, क्योंकि ऐसी बातें तो प्रति-दिन होती थीं, घर में खाने को कुछ भी प्राप्त न होता था और इसके बाद जब जब वह किसी वस्तु की ओर ईप्सित दृष्टि से देखता तो माता-पिता की ओर से एक चपत प्राप्त हो जाती। यद्यपि कल की चपत से उस दिन की चपत अधिक सख्त थी तो भी करनैल को एक शरारत का अवसर अनायास प्राप्त हो गया। उसने शीशे के सामने से बाम उठाई और आधे से अधिक अपने माथे पर मल ली। करनैल को बाम मलने का बहुत शौक़ था, उसे वह मस्तक पर ठंडी ठंडी लगा करती थी, वह बाम लखीसिंह ने बसन्तो के लिए खरीदी थी, क्योंकि वह ल्यूकोरिया (प्रदर) की रोगी थी और उसे सदा सिर पीड़ा रहती थी। लखीसिंह ने बाम को व्यर्थ नष्ट होते देख कर दूसरे गाल पर भी तमाचा मारने का यत्न किया परन्तु वह सोचने लगा कि बाम तो पहले ही आधी से अधिक

समाप्त हो चुकी है।

इस समय लखीसिंह को भूख लग रही थी, और वह बसन्तो से लड़ना चाहता था। उसने बात बाल-बच्चों के शिक्षण से आरम्भ की और कहने लगा, बच्चे तो अंगरेज़ स्त्रियों को पालने आते हैं—भारतीय स्त्रियों को माँ बनने का कोई अधिकार नहीं। यद्यपि बसन्तो इस ढङ्ग से अंगरेज़ों की प्रशंसा नहीं सुन सकती थी और साधारणतया बात यहाँ समाप्त होती थी—इन लोगों के पास बच्चों को पिलाने के लिए धाय होती हैं, भोजन बनाने के लिए खानसामे, और लखीसिंह ऐसी बातें सुनकर चुप हो जाया करता था। सोशलिस्टों के बीच वह घण्टों बहस करता परन्तु इस जगह वह पाँच मिनट से अधिक नहीं बोल सकता था। सत्य इतना तलख़ होता था कि उसे अपने चेहरे की छाया दिखाई देने लगती। पर आज बसन्तो इस बात पर भी मौन रही। एकाएक द्वार की ओर से तीव्र दुर्गन्ध आई और लखीसिंह गरज कर बोला—'तुमसे यह भी न हो सका कि दरवाज़ा बन्द कर लेती'...... बस नवाबज़ादी ही बनना चाहती हो तुम"—बसन्तो ने उठ कर दरवाज़ा बन्द कर दिया।

लखीसिंह अपनी दाढ़ी के बिखरे हुए बालों को सुई लगा कर आँगन में टहलने लगा। भूख के कारण उसे डकार आ रहे थे और पेट में नाभि के ऊपर एक अद्भुत सी आवाज़ पैदा हो रही थी जैसे बाढ़ में नदी के किनारे एक ऊँची आवाज़ के साथ पानी में गिरते हैं! उसे भी कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसके पेट की दीवारों से कोई चीज़ आमाशय में गिर रही है, एकाएक लखीसिंह को कुछ सूझ गया, पौदों को अपने सामने पाकर बोला—

"भला इन बैंगन के पौदों का लाभ ही क्या?',

"लाभ क्यों नहीं ?" बसन्तो ने आलुओं को देगची में डालते और हाथ छाँटते हुए कहा। लखीसिंह अपने विशेष दुआबिया ढङ्ग से गरजा, "मेरा तो जी चाहता है कि इन्हें अभी इसी समय उखाड़ कर फेंक दूँ। दो महीने से ऊपर होने को आए हैं और इनमें फल का नाम-निशान तक नहीं।"

लखीसिंह और बसन्तो में इस बात पर झगड़ा हुआ करता था, कुढ़ती हुई बसन्तो बोली—

"तभी तो तुम्हें बच्चों से घृणा है।"

"बच्चों से मुझे काहे को घृणा होगी ?"

"अठारह वर्ष की आयु तक उनके पोषण का तुममें सन्तोष कहाँ है, अभी से कह रहे हो कि लखबीर को गाना सिखाना चाहता हूँ ताकि वह बचपन ही में कमाने लगे और इसी आयु से हम उसकी कमाई खाने लगें।"

लखीसिंह चुप रहा और मूँगी तोरी की बेल के गिरे हुए सिरे को कील पर टाँगने लगा। बसन्तो माँ थी। उसमें बच्चे और पौदे पालने और उन्हें धीरे धीरे बढ़ते देखने का धैर्य्य था। वह प्रतिदिन सवेरे उठती और कहती—आज बैंगनों को दो फूल लगे लगे हैं और दो की डंडियाँ फूल रही हैं। अब तोरिया फलने की ऋतु आई हैं और तुम्हें आखिर करनैलसिंह से किस युग का बदला लेना है ? धीरे धीरे समझदार हो जायगा, ऐसे ही उसे पीटते रहते हो। लखीसिंह को ख्याल आया कि मूंगी तोरी की बेल को जहाँ से काटा गया था वहाँ से अधिक लहलहाती है, वहाँ अधिक कोंपलें फूटी हैं। वह झट बोल उठा, यह पौदे काटने-छाँटने से अधिक विकसित होते हैं तभी तो मैं करनैल को मारता हूँ।

जिस दिन लखीसिंह और बसन्तो में झगड़ा होता उस दिन बसन्तो वही ढीला-ढाला क़्लाउज़ पहनती जिससे लखीसिंह को बहुत घृणा थी और वह दोपहर तक सिर के बालों को भीगा न करती. अपने कपड़ों और शकल से वह इस प्रकार सुस्त और ज़र्द दिखाई देती जैसे वह 'रजस्वला' हो। कभी-कभी वह कमर पर हाथ रख कर धीरे-धीरे कराहती और लखीसिंह धीरे-धीरे कराहने से बहुत घबराता था। ज़ोर से रोने का उस पर कभी प्रभाव नहीं हुआ था। उसका विचार था कि यह हल्की-हल्की चीज़ें जैसे हल्की-हल्की खाँसी, हल्का-हल्का बुखार, हल्का-हल्का हँसना सदा भयानक होता है। उस समय बसन्तो उसे अधिक तंग करने के लिए खाट पर औंधी पड़ जाती और पाँयती में पाँव अड़ाकर ऐसे ही ज़ोर लगाने लगती और बच्चा सफ़री पिंगूड़े में अर्ध धूप और अर्ध छाया में एक भीषण आवाज़ से कराहता रहता और फिर एकदम चीख उठता, जैसे उसे चींटियों के किसी दल ने एकाएक काट खाया हो।

देगची में से हल्का हल्का धुआँ उठ रहा था, आलू उबल चुके थे, बसन्तो ने उन्हें ठंडे पानी में उँडेला और लखीसिंह उन्हें छील कर खाने लगा। इन आलुओं के अतिरिक्त घर में कुछ नहीं था और लखीसिंह यह भूल जाना चाहता था कि इन सेर भर आलुओं में बसन्तो, करनैल, लखबीर और बच्चे का भी भाग है। वह कहता, डाक्टरों का मत है कि आलू पेट को गन्दा करते हैं, तदनन्तर वह नमक मिर्च लगाकर उन्हें चटख़ारे लेता हुआ खा लेता जैसे कह रहा हो मुझे अपने पेट का मल बहुत पसन्द है।

जीवन सुखमय था, उसमें ऐश्वर्य न था, सोहनहलुआ न था, पर आलू तो थे और लखीसिंह प्रतिदिन सन्ध्या को चैम्बरलेन रोड

पर से होता हुआ सब्ज़ी मंडी के समीप जा खड़ा होता और साँझ शमसुद्दीन को लौटने वाले छकड़ों पर से समस्त आलू समेट लिया करता। अठारह तारीख़ को उसे 'हिन्दुस्तान टाईम्स' से 'भिक्षुओं की समस्या' के लेख के पैसों की आशा थी और आज बारह तारीख थी, पेट की आग के लिए आलू यथेष्ट थे।

अचानक कमेटी की ओर से बैलगाड़ियों के लिए न्यूमैटिक टायरों का बिल पास हो गया। यह सब कुछ निर्धन गाड़ीवानों की शक्ति से परे की बात थी। वे सौ सौ रुपये के टायर कैसे प्राप्त कर सकते थे? कामरेडों की एक बैठक ने गाड़ीवानों की हड़ताल करवाने का निश्चय कर लिया और लखीसिंह ने भी हड़ताल की सफलता के लिए तत्परता से काम करना शुरू कर दिया।

हड़ताल के पहिले ही दिन लखीसिंह का जीवन आलुओं से रहित हो गया था—एकदम रिक्त। राशन की खोज में सारा दिन घर से बाहर घूमते रहनेके बाद लखीसिंहने बसन्तो की उद्योगशीलता पर विश्वास करते हुए एक अपराधी की भाँति घर के भीतर प्रवेश किया। बसन्तो नित्य की तरह आलुओं की प्रतीक्षा कर रही थी। भीतर पहुँचते ही लखीसिंह ध्यान से बैंगनों के पौदों की ओर देखने लगा लेकिन अभी तक तो पौदों में कोई फूल भी अच्छी तरह से विकसित नहीं हो पाया था।

लखीसिंह बसन्तो से लड़ना चाहता था। जिससे वह आलुओं के सम्बन्ध में पूछे ही नहीं और लड़ने के पश्चात् दोनों एक दूसरे से लड़कर चुपचाप अपने अपने स्थान पर पड़े रहें। लखीसिंह चाहता था कि इस लड़ाई के पीछे सदैव की भाँति बसन्तो अपने मायके चले जाने की धमकी दे और वह शीघ्र स्वीकार करके उसे स्टेशन

पर बिना टिकट गाड़ी में सवार करा दे, परन्तु आज बसन्तो ने वह गुलाबी ब्लाउज़ नहीं पहना हुआ था। आज उसने वैल की सफेद धोती बाँध रक्खी थी जिससे लखीसिंह को मोह था।

उस समय लखीसिंह ने बसन्तो को गाड़ीवानों की हड़ताल के सम्बन्ध में बताया और आलुओं के न लाने का कारण भी सुनाया। बसन्तो कुछ देर अपना सिर हाथ में दिए बैठी रही फिर वह क्रुद्ध भाव से लखीसिंह की ओर देखते हुए बोली—'तुमने हड़ताल का विरोध क्यों न किया ?"

लखीसिंह ने कोई उत्तर न दिया। बसन्तो हड़ताल के सञ्चालकों को गालियाँ देने लगी—उन सञ्चालकों को जिनमें उसका अपना लखीसिंह भी था और जिनमें से बख्शी केवल इसीलिए निकल चुका था कि वह आलुओं के बिना जीवित नहीं रह सकता था। लखीसिंह सोचने लगा बसन्तो ने एक अच्छे कामरेड की तरह सदैव मेरा साथ दिया है परन्तु अब वह भी मुझे छोड़ रही है। उस समय करनैल गली में से आया और पिता का खाली हाथ देख कर रोने लगा। बसन्तो प्रातःकाल से ही उसे पिता के आने की प्रतीक्षा करने के लिए कह रही थी। अपने बेटे को ऐसे रोते देख बसन्तो और भी विषाक्त हो गई।

लखीसिंह को बसन्तो से यह आशा न थी—वह अपना सिर दोनों हाथों में देकर बैठ गया और सोचने लगा—

"क्या बसन्तो प्रतिक्रियावादी हो गई है ?"

——————

मन की मन में

माधव की पत्नी को लोग कुलकारनी पुकारते थे, यदि मैं बहुत कुछ चूकता नहीं तो यह नाम कुलतारनी से ही बिगड़ कर बना था, अर्थात् कुल की डूबती हुई नैया को पार लगाने वाली। यह प्यारा दुलारा नाम न केवल कुल को लाज लगानेवाली से विरोध ही प्रकट करता है बल्कि इसका कुछ और भी गहरा मतलब है जिसे माधो के अतिरिक्त कोई कम ही जान सकता है, ठीक इस प्रकार जैसे सङ्गीत में लहरों के अतिरिक्त एक ऐसी मस्ती की छटा पैदा होती है जिसे हृदय ही कुछ समझ सकता है और फिर चोट खाया हुआ हृदय!

सच तो यह है कि यह नाम ही कुछ गोरखधन्धे से है। जाने लोग क्यों कभी कभी जन्म के अन्धे को नैनसुख और निपट गँवार को विद्यासागर कह देते हैं।

कई बार कोई भोला-भाला बच्चा अचानक अपनी 'माँ' से प्रश्न कर देता है कि मैं इस संसार में कहाँ से आया तो माँ घबरा कर उत्तर देती है, "बेटा, निराली पूर्णिमा के दिन इन्द्र भगवान ने बहुत वर्षा की, इसी समय बहुत से बच्चे आकाश से गिरे उनमें से एक तुम थे, मुझे बहुत मनमोहने लगे और मैंने तुम्हें आँगन में से उठा लिया, या कहती हैं, तुम्हारा पिता एक सौ छयालीस घुंडियों वाला जाल लेकर रामतलाई या शाह बिलौर के जोहड़ में मछलियाँ पकड़ने गया, वहाँ न मछली थी न कछुआ, केवल जोंकें थीं, एक छोटा सा मेंढक शुरू से जुलाहे के घर के सामने रुई के एक गाले पर

आराम से बैठा हुआ वर्षा की प्रसन्नता में गा रहा था, वह तुम्हीं थे, तुम्हारा पिता तुम्हें उठा लाया और हमने पा लिया।" कुछ ऐसी ही बात हमने माधो के सम्बन्ध में भी सुनी थी, कि वह चिकनी मिट्टी के एक ढेले से बना था—ओहरी नदिया में बाढ़ आने पर मिट्टी के एक ढेले ने रामतलाई के मन्दिर में ठाकुर जी के चरणों को छुआ, मिट्टी जल और वायु तो पहिले ही से उपस्थित थे, आकाश और अग्नि मिली तो बच्चा बन गया। और यह सब ठाकुर जी की दया से हुआ—गुलाब गढ़ के सब प्राइमरी पास या मिडल फेल आदमी इस बात को मानने से साफ़ इन्कार कर देते हैं। भला वे इस बात का उत्तर तो दें कि सीता जी किस प्रकार खेत में दबाए हुए एक घड़े को हल की ठोकर लग जाने से पैदा हो गईं, कर्ण जी किस प्रकार कुन्ती के कानों की मैल से बन गए? रामचन्द्र जी के दूसरे पुत्र कुश को कुशा घास से कैसे बना लिया गया?

भले ही माधो मिट्टी के ढेले से बना था फिर भी वह मिट्टी का माधो नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि वह एक बहुत समझदार मनुष्य था। यदि घर के आदमी उसे मिट्टी का माधो समझते थे तो समझा करते, घर का जोगी किसको भाया ···· घर वालों को तो यही शिकायत थी न कि माधो घर का काम-काज न करके दूसरों का काम करके ही अधिक प्रसन्न होता था—वस्तुतः इस बात से माधो की प्रशंसा का ही पक्ष निकलता है।

हाँ, कुछ माधो की सूरत के सम्बन्ध में। वह क़द का गठीला था और शरीर का इकहरा, आयु यही कोई चालीस पैंतालीस के लगभग होगी, चेहरे पर के चेचक के दाग गोरे रंग से घो-खिचड़ी हो रहे थे। फुलकारनी की आँखें तो रसीली थीं ही परन्तु माधो की

बहुत दूर तक मार करती थीं, कुछ बाहर को उभरी हुई थीं—इतनी उभरी हुई कि सोते में उपद्रवी के द्वार की तरह अर्धनिमीलित ही रहती। गुलाबगढ़ के प्राइमरी स्कूल के मुन्शी भाई गरीबदास जो कभी-कभी नगर में जाकर एक आध रद्दी सी फ़िल्म के दृश्य का आनन्द ले आया करते थे माधो की आँखों को 'पिया मिलन की आस' आँखें मारकर कहा करते थे और उनके होनहार शिष्य अपने गुरु की कल्पना में संवर्धन करते या बिलकुल नवीनता लाते हुए माधो को 'चमगादड़-नयन' कहते थे।

कुलकारनी जीवन के उज्ज्वल और माधो अँधेरे पक्ष को देखने का अभ्यस्त था—दोनों की प्रकृति में एक मनोरञ्जक लेकिन तीव्र विरोध था। इसी कारण बहुधा उनकी आपस में एकाध झपट हो जाया करती—माधो की निराशा इतनी अधिक विख्यात थी कि जो कोई उसे बाज़ार में मिलता तो जयराम जी की या साहब सलामत के स्थान पर कहता—

'कहो भई माधो—मन की मन में रही।'

नश्वरता का प्रतीक और निराशा का अधिष्ठाता एक गहरी ठण्डी साँस लेता और कहता—

"हाँ······भाई ···मन की मन में ही रही।"

और इस प्रकार का बुलाने का ढङ्ग कुलकारनी को सिर से पाँव तक जला देता। क्या करता वह ? गुलाबगढ़ के लोग तो उसके विवाह से पहले ही माधो की इस निराशात्मक अभिरुचि के कारण उसे इसी तरह बुलाने के अभ्यस्त हो गए थे। उन्हें रोकना उस पौदे को मोड़ने की भाँति था जो एक ख़ासा तनेदार वृक्ष बन चुका हो—तो भी वह बहुत झल्लाती और जो कोई माधो को इस

प्रकार बुलाता, दूसरे दिन उसकी पत्नी, माँ या बहिन से कुलकारनी की लड़ाई होती। और कुलकारनी उत्तर माँगती "आखिर इस मन की मन में रही का मतलब क्या है ?"

माधो कुलकारनी के इस प्रतिवाद पर बहुत प्रसन्न होता—डफ़ली बजाता और कहता—

मेरा जीवन कुलकारनी को कितना प्यारा है, किसी को 'मन की मन में रही' कहने ही नहीं देती. जब कि न उसे हँसली बनवा कर दी है और न पाजेब ......अरे तीन महीने से तो पीट रही है।

एक दिन मैंने माधो को एकाएक दार्शनिक बनते देखा। मुन्शी गरीबदास के सामने वह स्त्री के शील और स्नेह की प्रशंसा कर रहा था—कुंगरू की कुलाँच से अधिक अद्भुत और ग्रामीण ढंग में ......और कौन नहीं भाँप सकता था कि इसका इशारा कुलकारनी की ओर है – उसके शब्द थे

"अरे गरीबदास यदि दुनिया स्त्री के बदले पुरुष के पेट से पैदा होने लगे तो दया, प्रेम और नम्रता का नाम ही न रहे— स्त्री पुरुष को अपनी कोख से जन्म देकर इसके अक्खड़पन को दूर कर देती है।"

कितना वास्तविकता से पूर्ण था माधो का तत्वज्ञान। ऐसी लाखों की एक सुनकर भी जो माधो को मिट्टी का माधो कहे, क्या वह स्वयं मिट्टी का माधो नहीं है ?

———

—२—

बुर्ज वाले कूएँ की खीड़, भरकल, टील या लट्ठ टूटते टूट जाय मगर माधो उसकी ओर ध्यान नहीं देगा। बैलों की जोड़ी

से अधिक से अधिक काम लेकर चारा न डालकर उसके–दो दो सौ के बैलों की जोड़ी को ऐसी नाकारा बना देता कि गुल्लूशाह के भरे मेले में उनका मूल्य पचास पचास रुपये से कौड़ी न बढ़ेगा। घर में किसी खुशी ग़मी के अवसर पर माधो से किसी प्रकार की आशा व्यर्थ होगी, परन्तु वह दूसरों की सहायता के लिए कितनी जल्दी लँगोटा कसेगा……। गुलाबगढ़ में एक विधवा अम्बो रहती थी—उसके पति को मरे सात वर्ष के लगभग हो गए थे उसी दिन से बेचारी अपनी इज़्ज़त सँभाले बैठी थी—यदि उसे समाज के भरोसे पर छोड़ दिया जाता तो बेचारी कभी की नष्ट हो चुकी होती। माधो को उसकी सहायता करते देख कर लोग कई प्रकार के मिथ्या अभियोग लगाते, तरह २ की बातें बनाकर निर्दोष माधो और अभागी विधवा को बदनाम करते। समाज में इतनी दया कहाँ कि जिस वस्तु को देने से वह स्वयं सकुचाता है, वह किसी व्यक्ति को देते देखे। अम्बो को सहायता देने पर लोगों के विरोध ने दोनों का जीवन अजीरन कर दिया था और इस विरोध में कुलकारनी सब की अगुआ थी।

यदि यह सत्य है कि किसी पर-पुरुष का इस प्रकार किसी विधवा की सहायता करना पाप है, तो इसी प्रकार यह भी सत्य है कि समाज के अभ्यन्तर रख कर ऐसी हीनावस्था वाली विधवा के रहे-सहे हाड़-मांस को खाना कोई पाप नहीं।

एक दिन माधो कहीं बाहिर से आया—वह चेहरे से किसी गम्भीर विचार में डूबा हुआ दिखाई देता था।

"मुझे बीस रुपए दोगी—कारनी ?" माधो ने गाढ़े की चादर को कन्धे पर डालते हुए कहा—

"क्या करोगे इतने रुपयों का ?"

माधो को इसी प्रश्न की आशा थी. फारनी को इस बात का वहम था कि माधो अपनी परोपकार-वृत्ति के कारण उचित अनुचित रुपया खर्च करता रहता है। उसका विश्वास था—जो आप खाया सो खाया जो खिलाया सो गँवाया। वह रुपया जमा भी करती तो इसलिए कि जीवन में कभी काम आएगा—जैसे कि वह सदा जीवित ही रहेगी—इतनी लम्बी आस...... और श्राद्ध में मृतकों के नाम पर वह बहुत सा रुपया दान भी करती परन्तु इस प्रकार के दान से माधो सहमत नहीं था।

"क्या करोगे इन रुपयों का ?"

इस प्रश्न का उत्तर माधो ने पहले ही से अपने मन में सोच रक्खा था, झट बोला,

"कुछ ही दिन हुए तू स्वयं ही हँसली और पाजेब के लिए कह रही थी......मैं बाहर जा रहा हूँ, बनवा लाऊँगा।"

कुलफारनी उछल पड़ी—भला हँसली और पाजेब के लिए कौन बीस रुपए न देगा—वह झट गेहूँ के ढेर में छुपाई बाँसली उठा लाई और बीस की जगह पचीस माधो की कमर मे बँधवा दिए और बोली—सुनो कल संक्रान्ति है... मकर संक्रान्ति, तुम्हारे बहू-बेटे का पहला त्योहार होगा, हो सके तो सुनार के पास ही बैठ कर हँसली ढलवा लेना, नहीं तो इसके बदले कोई और ही ले आना... पल के पल पहन लूँगी, जल्दी आना, मैंने त्योहार मनाने का सब प्रबन्ध कर लिया है।"

माधो ने कमर में बँधी हुई बाँसली पर एक चुस्त सी सदरी पहनी और चल दिया।

संक्रान्ति भी आ गई, उस दिन सूर्य्य धन-राशि से निकल कर

मकर-राशि में प्रवेश करता है। इसीलिए इसे मकर संक्रान्ति कहते हैं। संक्रान्ति की देवी ने माधो के अतिरिक्त गुलाबगढ़ तो क्या समस्त संसार में से पाप के ह्रास के लिए अपने बड़े बड़े नेत्रों को फैला, त्रिशूल तान संसार की यात्रा करनी आरम्भ कर दी थी, सजीसँवरी स्त्रियाँ तिल, गुड़, बेर, अमरूद और गँडेरियाँ बाँट रही थीं—प्रेम के इस आदान-प्रदान को 'ओटी भरन' कहते हैं। ओटी भरन करते हुए वे अनायास ही हमारे जीवन में एक रूह फूँक देनेवाला सन्देश दे रही थीं, लम्बी से लम्बी और काली से काली जबान रखने वाली स्त्री भी अपने मुख पर एक अस्थायी सी मुस्कराहट लाकर कह रही थी—मीठा मीठा खाओ और मीठा मीठा बोलो।

माधो के बहू बेटे का पहला त्योहार था, अतः दोनों को आँगन के मध्य में एक धोती और एक लँगोटी बँधवाकर बिठा दिया गया। शरीर पर तेल और दही मला गया, तदनन्तर बहू की बहिन ने बहू को और वर की बहिन ने दूल्हा को सुहेले गाते हुए स्नान कराया, फिर उन्हें सुन्दर वस्त्र पहनाए गए—आँगन के एक कोने में बैठे हुए आदमियों ने कुछ पुराने शङ्ख और नफ़ीरियाँ बजाईं—दफ़ पर चोट पड़ी, कुलकारनी ने सिंदूर, मिश्री और नारियल बाँटा। उस समय माधो को बधाई लेने के लिए वहाँ उपस्थित होना आवश्यक था, परन्तु वह कहीं भी दिखाई न देता था।

कुलकारनी को तो अपनी हँसली और पाजेब की पड़ी थी। वह रह रहकर माधो को कोसती और अपने गले और एड़ियों को साड़ी के पल्लू से छुपाती थी। कुलकारनी जान गई कि सुनार ने हँसली बनाते हुए देर लगा दी होगी। कभी कभी उसे ख्याल आता शायद माधो मेरे दुर्व्यवहार के कारण मुझसे रूठ गया हो, क्योंकि

वह जानता था कि मकरसंक्रान्ति के दिन रूठे मनाए जाते हैं परन्तु सीधा-सादा माधो इतना छल-फ़रेब कहाँ जान सकता था — सुनार के पास आदमी दौड़ाया गया तो पता चला कि माधो वहाँ पहुँचा ही नहीं।

माधो की डौंडी पिटी—कोई बच्चा थोड़े ही था कि मार्ग भूल जाता, कुलकारनी की व्यग्रता बढ़ी--उसने चारों ओर आदमी भेजे। इस बात में सन्देह नहीं कि माधो ने घर पूर्ण रूपेण कुलकारनी सी चतुर स्त्री को सौंप रक्खा था तो भी इतना हृदयहीन न था कि अपने बहू-बेटे के पहले त्योहार के सगुन मनाने से वंचित रहता।

सन्ध्या तक न माधो पहुँचा और न कुलकारनी की हँसली और पाजेब—कुलकारनी की चिन्ता और क्रोध दोनों शीघ्रता से बढ़ने लगे।

जब सन्ध्या के समय दियों को दियासलाई दिखाई गई स्त्रियाँ सब की सब एक एक करके चली गईं। पहले कोलाहल से परिचित कान अटूट नीरवता पाकर सौंय-साँय करने लगे। उसी समय कुलकारनी के कानों में एक धीमी सी आवाज़ आई—इसका पड़ोसी बनजारा कह रहा था—

"कहो भाई······माधो मन की मन में रही।"

उत्तर में एक बेजान सी आवाज़ आई—"हाँ भाई मन की मन ही में रही।"

अब तक तो कुलकारनी की चिन्ता क्रोध को दबाए हुई थी, अब माधो को सुरक्षित पहुंचते और खुशी के दिन 'मन की मन ही में रही' के शब्द कहते सुनकर उसके क्रोध ने चिन्ता को दबा लिया—वह सिर से पाँव तक राख ही तो हो गई, बिजली की भाँति तड़की,

आंगन में आई और ड्योढ़ी में पहुँचकर दरवाज़े की साँकल भीतर से चढ़ा दी। नङ्गी एड़ियों को देखकर उसका क्रोध और भी चमक उठा—इस समय तक माधो द्वार पर पहुँच चुका था और सर्दी से काँप रहा था—पोह माघ की ठंड जिगर तक पहुँचती है। काँपते हुए माधो ने कुलकारनी से द्वार खोलने के लिए मिन्नत की।

भीतर से आवाज़ आई, जाओ बाहिर ही रहो, अब तुम्हारी ज़रूरत ही क्या है—जिधर मुँह उठाए हो उधर ही चले जाओ—उत्तर है तो उत्तर को—दक्षिण है दक्षिण को ···घर क्या है हँसी खेल बना रक्खा है, बड़ी सोंठ की जड़ तलाश करने गए थे······ यह भी नहीं सूझता कि घर में खुगी है···परमेश्वर ने चाहा तो मन की मन में ही रहेगी ··· बावेला क्यों करते हो?"

माधो कुछ देर के लिए ठिठक गया, फिर बोला—दरवाज़ा तो खोलो—कारनी देखो सर्दी के मारे अकड़ रहा हूँ, तुम्हारी हँसली और पाजेब ही तो बनवाने गया था।

"मैं जानती हूँ तुम्हारी तो परछाईं तक सुनार के पास नहीं फटकी ···सच सच कहो, क्या तुम उस मेरी सौत के पास नहीं गये थे?"

"कौन सौत?"

"अम्बो—और मेरी सौत कौन होगी?"

वास्तव में माधो इसी के पास गया था—कुलकारनी के सामने इस बात मे इन्कार करने का उसे साहस न हुआ, और वह इन्कार करता भी क्यों बोला—

"ठीक है कारनी—अम्बो बहिन ने कहला भेजा था, साहूकार के रुपए को दो दो, और दो दो के तीन तीन बना लिए

है... और मैंने बीस रुपए तुमसे असल में इसीलिए माँगे थे, तुम्हारी हँसली मैं अपने पैसों से बनवा दूँगा जो डाकघर में जमा हैं—चिन्ता न करो, दरवाज़ा तो खोलो।"

माधो को कोई उत्तर न मिला, कुलकारनी के बुड़बुड़ाने की आवाज़ आई, वह कह रही थी,

"बरस दिन बाद एकाध दिन खुशी का आता है...... उसमें भी दुःख ही मिलता है बहू-बेटे का त्योहार रोज़ रोज़ आएगा न, ऐसे अवसर पर खुशी को दबाकर कौन दिक़ मोल ले...यह है कि"

माधो ने ठंडी साँस भरी और कहा

'किसी बहिन भाई को दुखी देखकर मुझसे तो मदन और रति के सहेले न गाए जाते हैं, न गाए जायँगे।"

कुलकारनी ने दरवाज़ा न खोला.....

परन्तु उसे नींद कहाँ आती थी—एक डेढ़ घण्टे के बाद उसने धीरे से किवाड़ खोले तो देखा कि उसका लौकिक ईश्वर पति द्वार की चौखट पर सिर टेक कर ऊँघ गया था, उसके घुटने छाती से लग रहे थे, कारनी की आँखों से आँसू टप-टप गिरने लगे—लज्जा के गहरे अनुभव से उसने माधो का कन्धा हिलाया, बोली—

मैं कहती हूँ ....

"........ ...."

"जी मैं कहती हूँ .....चलोगे ? अन्दर......

माधो ने आँखें मलते हुए सिर उठाया और बोला, "हाँ ..... चलूँगा ? माधो ने अँधेरे में अपने हाथों को देखने लगा—सर्दी में हाथ सुन्न हो रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे उसके अपने नहीं हैं। कुलकारनी ने शीघ्रता से अँगीठी जलाई, माधो के अकड़े हुए

शरीर को गरम किया और उसके चरणों पर सिर रख कर देर तक रोती रही—और यह रोना धोना काहे का ··· माधो को तनिक भी क्रोध नहीं था।

आधी रात के समय माधो की छाती में कुछ पीड़ा अनुभव हुई। शेष रात्रि भर वह छाती को दबाता और कराहता रहा, कुलकारनी ने घी गरम करके जायफल कूट कर मालिश भी की—मगर माधो का दुख बढ़ता गया।

प्रातःकाल होते ही उसका कष्ट बहुत ही बढ़ गया—आस पास से सयाने बुलाये गए, माधो को निमोनिया हो गया था—उसके दोनों फेंफड़े सुन्न हो गए थे, साँस कठिनाई से आती थी, कारनी कहती थी कि निमोनिया आदि कुछ नहीं अम्बो बहुत जंत्र मंत्र जानती है, उसने कुछ न कुछ दे दिया होगा। यदि वह गत रात्रि की घटना को दृष्टि में रखते हुए अपना अपराध स्वीकार कर लेती तो वह देवी से कम क्या होती, परन्तु वह तो केवल एक स्त्री थी।

एक पहर पीछे माधो का कष्ट कुछ हल्का हुआ, उसने कारनी को बुलाया और बोला, "मैंने सुना है··· कि तुमने अम्बो को अन्दर तक न आने दिया, सवेरे जब वह मेरी खबर लेने आई थी ···क्यों ?

"न जाने क्यों ?"

"तुम जानती हो मैं अम्बो बहिन को बहुत प्यार करता हूँ ··· "

'हाँ, पर मैं जग हँसाई नहीं चाहती, सारी दुनिया मेरे पीछे कुत्ते लगाएगी ··· जानते भी हो दुनिया को ? ····"

"जाने दो दुनिया को" माधो ने बाएँ फेंफड़े में पीड़ा की एक

टीस अनुभव करते हुए कहा, "अब जब कि मैं मर रहा हूँ मुझे किसी की परवा ही क्या है मेरे पास तो इतने बोल भी नहीं कि मैं अम्बो बहिन और उसके साथ अपने सम्बन्ध की पवित्रता को घोषित कर सकूँ ····हाय ····तुम अपने मरते हुए पति को वचन दो कि तुम अपने जीवन में उस ग़रीब की ऐसे ही खबरदारी करती रहोगी ····उसे अपने पास बुला लोगी ···कहो तो ·· "

"मेरी खबर-सार कौन लेगा ? तुम्हारे दुश्मनों को ·····" कुलकारनी निरन्तर रोते हुए बोली।

माधो ने आकाश की ओर उँगली उठाई।

माधो संसार को छोड़ रहा था, पर कारनी संसार से चिमटी हुई थी, उसने तो माधो को खाली संतोष देने के लिए भी 'हाँ' में सिर न हिलाया। वह बिल्कुल उस आदमी की भाँति तड़पता रहा जिसके मन में बहुत सी अभिलाषाएँ हों पर मृत्यु उसका गला आ दबाए ····कुछ देर बाद माधो का दर्द सदा के लिए मिट गया।

मरणोपरांत मृतक की जो अन्तिम बातें विशेष रूप से याद आती हैं उनमें से एक यह थी, "किसी भाई बहिन को दुखी देख मुझ से मदन और रति के सहेले न गाए जाते हैं न गाए जाएंगे।

—३—

हमारे देश में त्योहार त्योहार ही तो हैं—और है ही क्या ? कदाचित यहाँ कोई त्योहार न होता तो, विधवाएँ और अनाथ तो रोने से बच जाते। फिर एक बार मकर संक्रान्ति आ गई। फिर सूर्य ने धन राशि से मकर राशि में प्रवेश किया। संक्रान्त की देवी ने समाज की कलङ्क अम्बो के पाप के अतिरिक्त समस्त संसार के पाप के ह्रास के लिए अपनी बड़ी बड़ी आँखों को फैलाकर और त्रिशूल

तान कर संसार की यात्रा आरम्भ कर दी। ओरी भरन करते हुए लम्बी से लम्बी और काली से काली ज़बान वाली औरत भी अपने चेहरे को एक अस्थायी मुस्कराहट से सजाती हुई कह रही थी—मीठा मीठा खाओ और मीठा मीठा बोलो।

फिर समय आया कि बरसों के रूठे हुए मनाए जाएँ। अम्बो से तो गाँव का प्रत्येक बच्चा बूढ़ा रूठ गया था। वह किसको मनाती, उसका पति सलिया और माधो के रूठ जाने से सृष्टि का अणु-अणु उससे रूठ गया था। हाय, सलिया और माधो जैसे रूठने वाले कोई मानने के लिए थोड़े ही रूठे थे।

अम्बो के घर में काँसी के चमकते हुए बर्तन बिलकुल सोने के बने हुए दिखाई देते थे। झोंपड़ी में लेपन पोतन ऐसे किया गया था जैसे अम्बो के घर कोई आने वाला हो। कभी कभी वह आँख उठा कर देख लेती थी, क्या अजब जो कहीं घूमता फिरता सलिया ही आ जाए, नहीं तो माधो की सूरत ही दिखाई दे जाए।

माधो के बेटे में अम्बो को माधो भाई की ही आत्मा दिखाई देती थी, यद्यपि वह जानती थी कि गाँव के लोग साधारणतया और कुलकारनी और उसके बहू-बेटे विशेषतया, उसकी शकल देखने से उकताए हुए हैं, क्योंकि उसी ने तो माधो को कोई 'जन्तर-मन्तर' दे दिया था, फिर भी उसने काँसी की थाली में कुछ गाजरें मटर, अमरूद, बेर और गँडेरियाँ आदि रक्खीं ताकि माधो की बहू को दे आए—अपनी फटी साड़ी के एक पल्लू से उसने थाली को ढाँपा और माधो के घर चली।

अम्बो की हिम्मत न पड़ती थी कि वह दहलीज़ के भीतर पाँव रखे—एक वर्ष पहले लोगों के विरोध करने पर भी उसकी इस घर में पूछ होती है, आज वह इस घर में कौन थी, एक औरत ने उसे

भीतर आते हुए देखकर कहा, 'लो बहन—वह रही तुम्हारी सौत।"

कुलकारनी उसे देख कर जल-भुन गई। धीरे से बोली, 'मरती भी नहीं' अभागन ....'मरे तो मैं आटे में लोबान और घी पकाऊँ..... दूध का कटोरा पिऊँ .. गंगा स्नान करूँ .....न जाने क्या क्या करूँ।"

जब अम्बो बिल्कुल पास आ गई तो कुलकारनी अपने चेहरे को एक अस्थायी मुस्कराहट से सजाती हुई बोली—"आओ बहन, मीठा मीठा खाओ और मीठा मीठा बोलो।"

अम्बो ने उन दोनों की बातें थोड़ी बहुत सुन ली थीं—मौत का शब्द कान में पड़ते ही उसका सारा शरीर काँपने लगा, अनायास उसकी ज़बान से निकला, "भैय्या कहाँ है?"

दूसरी स्त्रियाँ मुस्कराने लगीं।

गत वर्ष ठीक इसी दिन माधो इससे अन्तिम बार मिलने गया था, इस बात को याद करते हुए अम्बो का हृदय मसोस उठा। कुलकारनी एक कोने में बैठी हुई थी, उसे भी पिछली संक्रांति याद आ गई, ठीक इसी दिन अम्बो ने माधो का कलेजा निकाल लिया था, परन्तु वह इस संक्रान्ति की रात वाली घटना बिल्कुल भूल गई थी, केवल माधो के वे शब्द याद थे "किसी बहन भाई को दुखी देख कर मुझसे मदन और रति के दोहेले न गाए जाते हैं न गाए जायेंगे।" सभी स्त्रियाँ हँसती खेलती रहीं—फिर ओटी भरन किया गया, सुहागनों ने एक दूसरी की माँग में सेंदुर लगाया, जब कुलकारनी की बहू की माँग में पड़ोस की एक वधू ने सेंदुर लगाया तो अम्बो वहीं खड़ी रही। सुहागन के पास विधवा खड़ी रहे, राम-राम ... कारनी ने अम्बो को भुजा से पकड़ा और धक्का देकर बरामदे से

बाहर कर दिया, बोली—

"देखती नहीं क्या हो रहा है .....?"

अम्बो ने चारों ओर देखा, कि कोई उसकी ओर तो नहीं देख रहा, परन्तु सब की दृष्टि उसकी ओर थी, अम्बो ने मुँह छिपा कर रोना चाहा पर वह रो भी तो न सकती थी, वर्ष वर्ष का दिन और रोना! कारनी जान ही तो निकाल लेगी! मगर रोना वर्ष वर्ष के दिन और साधारण दिन में कोई भेद नहीं करता, वह आपही आप आ जाता है, बल्कि अनाथ और विधवा का रोना वर्ष वर्ष के दिन ही तो होता है, इसी दिन मरे हुए बिल्कुल समीप आ जाते हैं, साथ ही उठते हैं, साथ ही बैठते हैं, हँसो तो हँसते हैं, रोओ तो रोते हैं, और गले मिल मिल कर रोते हैं, कोई उन्हें देखता है कोई नहीं देखता।

पड़ोस की बनजारन अम्बो के पास से होकर निकली और केवल अम्बो को सुनाने के उद्देश्य से गुनगुनाने लगी—'पतिव्रता का एक है व्यभचारिन के दोय।"

और फिर संक्रान्ति के कोलाहल में योग देती हुई बोली......
"मीठा मीठा खाओ और मीठा मीठा बोलो।"

अम्बो को पृथ्वी में स्थान नहीं मिलता था कि इसमें समा जाए। इस किंकर्तव्यता की दशा में कुलकारनी ने उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया। वह केवल दुनिया से चिमटी हुई थी और माधो के अन्तिम शब्दों का उसे कोई भी ख्याल न था। दूसरे दिन प्रातःकाल लोग कह रहे थे, न जाने अम्बो कहाँ चली गई—"

समाज के माथे पर से इस कलङ्क को कुलकारनी ने ही तो धोया

था, लोग उससे प्रसन्न थे और जब वे प्रसन्न होकर आदर के भाव से कहते, 'भई कुलकारनी ने अपने नाम की लाज रख ली' तो मूर्ख सा मुँह बना कर भाई गरीबदास एक ठंडी सी साँस लेता और कहता—

"—आह, पर ग़रीब माधो के मन की मन में रही।"

———

त्रिटेमन (बी)

एजर्टन रोड के ठीक मध्य में जहाँ मोटे मोटे अक्षरों में 'रोड अप' लिखा हुआ था, आधी दर्जन के लगभग लाल झंडियाँ वायु में लहरा रही थीं, मैं एक छोटा ओवरसियर होने के कारण मज़दूरों के काम की देख-भाल कर रहा था। मेरे हाथ में एक बहुत लम्बा टेप था जिससे बार बार मुझे मरम्मत वाली सड़क और कटी हुई रोड़ी को नापना पड़ता था।

'रोड अप' के बोर्ड के पास ही कोलतार के कुछ खाली टीन पड़े थे और उन पर लाल शीशों की बत्तियाँ जो रात्रि के समय उपयोग की जाती थीं अर्ध चन्द्राकार पड़ी थीं,—समीप ही पगडंडी में कुछ गहरे से गड्ढे दिखाई दे रहे थे। उन गड्ढों से चूल्हे का काम लेते हुए सड़क के मरम्मत हुए भाग पर बिछाने के लिए कोलतार गरम किया जा रहा था और दूर एक चीखता चिल्लाता हुआ इञ्जन बिछी हुई कंकरियों को दबा रहा था।

झंडियों और खाली टीनों के साथ ही कुछ मारवाड़ी और पूर्वी स्त्रियाँ सड़क के मरम्मत होने वाले भू-भाग को बड़े बड़े ब्रुशों से साफ़ कर रही थीं और अपने विशेष सुर-ताल में गाकर अपने काम में जान फूंक रही थीं। पास ही सिविल लाइन के थाने और एक बड़ी सी नर्सरी के मध्य एक लहसूड़े के नीचे दो एक बच्चे बिलख रहे थे। नर्सरी में कुछ छोकरे गुलेल और गोफे हाथ में लिए फल-दार वृक्षों से तोते आदि पक्षियों को उड़ा रहे थे। कंकरी छोड़ते समय वे ऊँची आवाज़ से 'अल्ला अकबर' पुकारते, कभी कभी

अकारण चीखते, ज़ोर ज़ोर से हँसते और अपनी आवाज़ की गुञ्जार से आनन्द उठाते। मेरा ध्यान लहसूड़े के वृक्ष के नीचे बिलखते हुए बच्चों की ओर चला गया। बच्चों के पेट फूले हुए थे और उनकी छातियाँ भीतर को धँस गई थीं। जब कोई मारवाड़ी या पूर्वी स्त्री अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए उठती तो ठेकेदार इर्फ़ानी क्रुद्ध दृष्टि से उसकी ओर देखने लगता परन्तु जैसे ही पीठ के पीछे से गरगराता हुआ इञ्जन सीटी देता, इर्फ़ानी उछल कर इञ्जन की लपेट से बाहर पटड़ी पर खड़ा हो जाता।

इस बार ठेकेदार इर्फ़ानी ने टेंडर बहुत कम रक़म का भरा था, इसीलिए मज़दूरों पर कड़ी निगरानी थी। सुस्ताना, गुड़गुड़ी के कश लगाना, दिन में दो बार से अधिक पेशाब के लिए काम छोड़ना नियम विरुद्ध था। बच्चों को एक बार से अधिक दूध पिलाने की आज्ञा न थी। मातृत्व के फलने फूलने या जन्म के दर का किसी को ख्याल न था और न राज्य की ओर से कोई सुविधा प्राप्त थी। इस तरह प्रतीत होता था जैसे वे बिलखते हुए बच्चे भूख से निढाल होकर मर जाएँगे।

जमादार रामावतार की सहायता से मैं पगडंडी पर पड़ी हुई रोड़ी को नापने लगा। रोड़ी साढ़े तीन फुट चौड़ी आठ फुट लम्बी और एक फुट ऊँची थी, और मेरे अनुमान के अनुसार बड़े से गोलाकार गड्ढे के लिए काफ़ी थी। उस समय मैंने मातादीन को अपने साथियों से अलग हो सुस्ताने के लिए बैठते देखा। मातादीन एक प्रौढ़ावस्था का पूर्वी मज़दूर था। जाति का कोरी था। शरीर की दृष्टि से वह शेष मज़दूरों की अपेक्षा कहीं अच्छा था। धूप में मातादीन का पसीने से भीगा श्याम वर्ण, नग्न, हृष्ट-पुष्ट शरीर

काँसे की एक बड़ी सी मूर्ति के समान दिखाई देता था।

मातादीन को इस दशा में देख कर मैंने 'टेप' को जमादार रामावतार के हवाले किया और 'रोड अप' को फलाँग कर मातादीन के पास जा पहुँचा और ऊँची आवाज़ से चीखा।" हे...... मातादीन।"

मातादीन घबरा कर उठ बैठा और अपनी अलसाई हुई दृष्टि मुझ पर डाल कर बोला, "मालिक।"

"हाँ मालिक...... आराम कर रहे थे न?...... शायद तुम इर्फ़ानी के स्वभाव से भली प्रकार परिचित नहीं हुए।"

"रात भर जागता रहा हूँ इसलिए ज़रा....."

"यह कोई कारण नहीं।"

मातादीन एक भयानक ढङ्ग से मुस्करा कर अपने काम में व्यस्त हो गया। उसके कुरूप चेहरे में मसूड़े फूलकर बड़े बड़े घिनौने दाँतों को मानो छोड़ रहे थे, वह रोड़ी कूटते हुए बोला—

"कामचोर नहीं हूँ मालिक...... आप जानते हैं मैं तो दो टिकियों में काम किए जाता हूँ पर....."

मातादीन एक ईमानदार मज़दूर था—वह शेष मज़दूरों से अधिक बुद्धिमान था, उसे दुबारा बात समझाने की आवश्यकता कभी न पड़ी थी। प्रातःकाल जब उसी सड़क पर सूर्य्य की पहली टिकिया पूर्व की ओर नर्सरी के छोटे छोटे वृक्षों के पीछे से उदय होती, उस समय से लेकर सन्ध्या तक जब कि दूसरी टिकिया पश्चिम की ओर नगर के मकानों की असम मुँडेरों की स्वर्णिम गोट को उधेड़ते हुए डूब जाती, वह निरन्तर काम किए जाता।

इसी समय के बीच धूल मिट्टी से सीना साफ़ करने के लिए माता-दीन कौड़ी भर पेशावरी गुड़ खाता और छुप कर एक आध गुड़-गुड़ी का कश लगाता। मैंने इससे पूर्व कभी उसे दम लेते नहीं देखा था।

इर्फ़ानी दृष्टि से ओझल खड़ा था। अपने उत्तरदायित्व को दर्शाने के अनन्तर मैंने मातादीन से पूछा—

"बहुत समय से मनभरी इन स्त्रियों में दिखाई नहीं देती······ अच्छी तो है न ?"

"अजी कहाँ अच्छी है, मातादीन बोला – उसी के लिए तो रात भर जागना पड़ता है और दिन को मेरी यह दशा होती है।"

मुझे एक भयानक से भू-भाग की ओर ध्यान देना पड़ा, यह वह स्थान था जहाँ सड़क के एकाएक पश्चिम की ओर घूम जाने के कारण इञ्जन के पहिए पहुँचने में असमर्थ थे—परन्तु मुझे अपनी ओर आकर्षित करते हुए मातादीन बोला—

"मालिक उसे 'वेरी वेरी' हो गई है, शायद मुझे यह नौकरी छोड़नी पड़े।"

"बेरी वेरी" मैंने अपने कंधों को झटका देते हुए कहा, "मैं नहीं जानता वेरी वेरी क्या होती है ?"

मातादीन बोला, "आप वेरी वेरी भी नहीं जानते······आप जैसे पढ़े लिखे आदमी न जानेंगे तो और कौन जानेगा ?"

और एक कृत्रिम सी मुस्कान मातादीन के चेहरे पर लुढ़कने लगी। उसने अपनी फटी हुई धोती के एक छोर को कमर से निकाला और कपड़े की कई सिलवटों में से कागज़ के एक जर्जर से टुकड़े को निकालते हुए मेरे हाथ में दे दिया। वह 'लाल जी भारती जी' धार्मिक चिकित्सालय का रोग-निदान पत्र था। रोग

का नाम बेरी बेरी लिखा था। तत्पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि पट्ठों में 'वर्म' हो जाने को बेरी बेरी कहते हैं और यह रोग भोजन में विटेमन 'बी' (पोषक तत्व 'ख') के प्रचुर मात्रा में न होने का आवश्यक परिणाम है।

"तो क्या मनभरी के पट्ठों में 'वर्म' हो चुके हैं ?" मैंने पूछा मातादीन ने अँगूठे और अँगुली से एक बड़े छेद का आकार बताते हुए कहा, "इतने बड़े ..... सरकार" मेरे शरीर में एक सनसनी सी दौड़ गई।

मातादीन कहने लगा "उसे खुराक अच्छी नहीं मिलती ..... डाक्टर की रपट देखी है न आपने ? उसने मांस, अण्डे, मक्खन और पनीर खाने के लिए कहा है।"

उस समय मैं सोचने लगा, भला रूखी सूखी दाल रोटी में से मनभरी पौष्टिक तत्व कहाँ से निकाल सकती है। यद्यपि कोरी, कुरमी और नीच जाति के पूर्वी लोग माँस खा लेते हैं परन्तु मातादीन पट्ठों का नरम नरम माँस, अंडे, मक्खन, पनीर, टमाटर और इसी प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ कहाँ से जुटा सकेगा ? जहाँ तक मेरा विचार था उसने तो चिरकाल से सब्जी का प्रयोग भी न किया था और अपने गाँव से किसी भाई बन्धु के हाथ मसूर की दाल मँगवा रक्खी थी। जिसे वह प्रातः सायं खाता था तभी तो उसे दाँतों की स्कर्वी थी। 'स्कर्वी' भोजन में पोषक-तत्व 'ज' के न होने का परिणाम है। उसके मसूड़े बहुत अधिक फूल कर टेढ़े मेढ़े दाँतों को छोड़ रहे थे। मैंने कहा, "चाहे किसी मातादीन या गंगादीन की जोरू मनभरी से अधिक रूपवती हो और कोई उसके लिए मातादीन से अधिक परिश्रम करे लेकिन वह मक्खन, पनीर की खुराक नहीं जुटा सकता। तदनन्तर मैं उस डाक्टर की अज्ञता पर हँसने

लगा जिसने बेरी बेरी का नाम मातादीन को स्मरण करा दिया था और इस प्रकार के पदार्थ चिकित्सार्थ लिख दिए थे। मातादीन के कथनानुसार डाक्टर का अपना रङ्ग 'सिंगरफ़ी' हो रहा था, कोई जाने 'खून फट कर बाहर आ जाएगा।' डाक्टर ने मातादीन को वह दवाई की बोतल भी दिखाई थी जिसमें विटेमन बी का द्रव्य प्रचुर मात्रा में उपस्थित था।

एकाएक मुझे याद आया, मातादीन काम छोड़ने के सम्बन्ध में कह रहा था, मैंने पूछा—

"तुम यहाँ से काम छोड़ दोगे ... कहाँ जाओगे मातादीन ?"

"छावनी में मालिक ! ... वहाँ डंडीदार के पास मुलाज़िम हो जाऊँगा—डंडीदार तुम्हारी तरह दयालु है।"

फिर मातादीन ने बताया कि एजटन और एवट रोड की मरम्मत से पहले जब कि लाट साहब का दफ़्तर बन रहा था, वहाँ मातादीन और मनभरी काम कर रहे थे, तब डंडीदार उधर आ निकला। धूप में बैठी हुई मनभरी को देख कर मातादीन से बोला, "इस बिचारी को क्यों तकलीफ देते हो, मेरे साथ छावनी चलो, स्टोर में बहुत से कुलियों की ज़रूरत है, तुम्हें रख लेंगे, पैसे अच्छे मिल जायँगे।"

फिर अपनी बात को चालू करते हुए बोला—"उसने खुराक देने का भी वचन दिया, मालिक ... स्टोर में काम करने वाले डंडीदार आँख बचाकर बहुत कुछ उड़ा सकते हैं। मेस (Mess) में से पनीर अण्डे भी ले सकते हैं। कम से कम राशन में से तो कुछ न कुछ उनके पल्ले पड़ ही जाता है।"

मैंने सोचा, शायद मातादीन को वहाँ से पोषक-तत्व 'ग' भी मिल सके और इसकी स्कर्वी भी दूर हो जाए, मेस में कद्दू, गोभी,

करम, शलजम, रामतुरई सभी कुछ तो आता है ।

एक परिश्रमी मजदूर को खो देने पर अवश्य दुःख होता है परन्तु मैं नहीं चाहता था कि मातादीन को किसी तरह भी उसके निश्चय से रोके रखूँ। कौन जाने मनभरी की वेरी वेरी की चिकित्सा हो जाए और फिर वह 'सिगरफी' हो जाए ।

कुछ दिन बाद मैं इर्फ़ानी का विश्वस्त कर्मचारी हो गया ।

एक प्राचीन क़बरिस्तान में हमारे पूर्वजों की हड्डियों और एक अष्टकोणी गढ़ी के खण्डहरों में से एक सरकारी भवन धीरे धीरे सिर उठाने लगा । मेरे हाथ में वही पुराना टेप था। बहुधा मुझे बुनियादों के भीतर घुस कर खुदाई की नपाई करनी पड़ती और कभी बढ़ई और संगतराशों के काम का निरीक्षण करना पड़ता ।

इर्फ़ानी ने बच्चों वाली सभी स्त्रियों को काम से अलग कर दिया था । जो स्त्रियाँ काम पर लगाई गई थीं वे पैसे कम लेकर मर्दों के बराबर काम करती थीं । जब सरकारी भवन की छत पर लिंटल डालना पड़ा तो कुछ और अधिक मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी । यह काम इर्फ़ानी ने मुझे सौंपा । मुझे कुछ परिश्रमी और ईमानदार मज़दूरों की ज़रूरत थी, मैंने जमादार रामावतार से मातादीन का पता पूछा । एकाक्षी जमादार ने सन्देह भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर हँसते हुए मातादीन का पता बता दिया और मैं उसकी खोज में छावनी जा पहुँचा ।

सन्ध्या का समय था, सदर बाज़ार की बिजलियाँ अभी जगी न थीं । एक गहरा धुआँ मजदूरों की घनी बस्ती 'लाल कुड़ती' और 'फ़ालोर लाइन्ज़' पर छाया हुआ था और समय से पूर्व ही अंधकार फैला रहा था । बड़ी कठिनाई से मुझे मातादीन की झोंपड़ी मिली।

एक बैठे हुए छप्पर के द्वार पर टाट का पर्दा पड़ा था और झोंपड़ी में मातादीन गुड़गुड़ी सुलगा कर तम्बाकू पी रहा था। एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध सब ओर फैली हुई थी, मातादीन के निकट एक रकाबी में कौड़ी भर माखन पड़ा था, एल्मोनियम की एक थाली में एक बड़ा सा गोभी का फूल रक्खा था और फूल में से एक सुंडी कुछ चिपचिपा सा लसलसा सा रस अपने पीछे छोड़ती हुई थाली के किनारे किनारे रेंग रही थी।

एक विटेमन सी से सनी मुस्कान मातादीन के टेढ़े-मेढ़े दाँतों और फूले हुए मसूड़ों को दिखाने लगी, ठीक उसी समय झोंपड़ी के भीतर से कराहने की आवाज़ आई।

मैंने झोंपड़ी के भीतर एक अन्धकारपूर्ण कमरे में झाँका। उस कमरे में मनभरी पड़ी थी। वहाँ वायु और प्रकाश की पहुँच न थी। मैंने कहा, "दयालु डंडीदार की कृपा से मनभरी को खुराक तो अच्छी मिल जाती है, सम्भव है इसे बेरी बेरी से मुक्ति प्राप्त हो जाए तो भी इस प्रकार के वातावरण में वह अवश्य किसी भयानक रोग का शिकार हो जाएगी। संसार में भोजन ही सब कुछ नहीं, प्रकाश भी तो है। खुली वायु है ...और क्षय है।

एकाएक उजाले से अँधेरे में चले जाने पर मुझे कुछ दिखाई न दिया। फिर धीरे धीरे मनभरी का सहमा हुआ चेहरा और क्षीण शरीर दिखाई देने लगा, हौलदली के पत्थर की तरह पीतवर्ण चेहरे के साथ मनभरी ठीक उस मिस्री लाश की सी दिखाई देती थी जिस पर अभी अभी शव-रक्षा की क्रिया की गई हो और जिसे नसलों तक सुरक्षित रखे जाने के लिए ममी में उतारा जाना हो।

मातादीन ने गुड़गुड़ी का एक लम्बा कश लगाया और बर्तन में में से सुंडी निकाल कर बाहर फेंक दी। गोभी को चीरा और मसाला भूनते हुए उसे तसले में डाल दिया। उसने बताया कि उसकी जोरू के बीमार होने के कारण डंडीदार बहुत कम काम देता है, सब कुली अफ्सरों की ठोकरें खाते हैं परन्तु उसे अफ़सरों के निकट जाने का काम ही नहीं दिया जाता। स्टोरकीपर डण्डीदार का सगा मामू है। राशन में से सब कुछ मिल जाता है। आखिर डण्डीदार कितना अच्छा आदमी है, ऐसे कुछ पुरुषों के सहारे ही तो दुनिया जीती है।

फिर मेरे निकट आते हुए मातादीन बोला—

"एक खुशी की खबर सुनाऊँ, मालिक।"

और फिर मेरे कान के पास मुँह करके बोला—

"वह उम्मीद से है।"

मातादीन के कथनानुसार साढ़े तेरह वर्ष विवाह को होने आए थे और उस समय तक सन्तान की कोई सूरत न दिखाई देती थी। मेरे विचार में तो यह मातादीन का सौभाग्य ही था। निर्धन वर्ग के प्राणी प्रायः अधिक सन्तति से तङ्ग होते हैं. उनके लिए तो एक बच्चा भी बोझ हो सकता है, परन्तु मातादीन प्रसन्न था।

मैंने सोचा शायद मनभरी पहले से भी अधिक बीमार हो जाए और यह भी सम्भव है कि बच्चे के जन्म के अनन्तर उसके कुछ रोग स्वयं ही दूर हो जाएँ। प्रत्येक दशा में मनभरी के देर तक बीमार रहने या प्रसूता होने में मातादीन को अकेले ही घर का बोझ उठाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उसका व्यय भी दुगुना हो जाएगा।

मातादीन की इस अद्भुत जीवनी में खोकर मैं अपने काम को भी भूल गया। मैंने कहा डंडीदार की कृपा से इन लोगों को पौष्टिक तत्व ख और ग दोनों मिल जाते हैं। इनकी प्रसन्नता—बच्चे की आशा भी सम्भवतः विटेमिन बी का करिश्मा हैं और बच्चे को भी उसके भाग्य का सब कुछ मिल जाएगा। अब वह इर्फानी की मज़दूरी नहीं करेगा, उसे परवा ही क्या है। मैंने उसके सामने मज़दूरों की बात ही न की, मानो मैं उसे वैसे ही देखने आया था।

इर्फानी का सामान नगर में ले जाने के लिए छकड़े थे उनके बैलों में से एक ज़ख्मी था, फिर भी उससे निरन्तर काम लिया जा रहा था। पशु-रक्षा-विभाग के एक अफ़सर ने गाड़ीवानों का चालान कर दिया। इस झगड़े को निपटाने का काम भी मुझे सौंपा गया और मैं विभाग के एक अधिकारी को घूस देने में व्यस्त था।

एक ओर से मातादीन हाँफता हुआ आ निकला। वह कठिनाई से पहचाना जाता था, इन कुछ महीनों में उसकी शक्ल एकदम बदल गई थी। उसके दाँत अधिक घिनौने हो गए थे और खड़े हुए मनुष्य का चेहरा अच्छी तरह देखने के लिए वह बार बार आँखें झपकाता था। पहले वह कुछ क्षण मुझे ध्यान से देखता रहा फिर मेरी आवाज़ को पहचान कर बोला—

"मालिक रामावतार के कहने पर यहाँ आया हूँ, वह कहता था आपको मजूर चाहिए, मेरा छोटा भाई आपके पास काम कर ही रहा है, मुझे भी रख लो।"

मैं अपने स्थान पर से उछल पड़ा, भला दो टिकियों में काम करने वाले मातादीन को कौन मज़दूर न रखेगा, परन्तु मैंने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—'क्या डण्डीदार का राशन समाप्त हो गया है।"

मातादीन कुछ न बोला।

"क्या तुम्हें खुराक नहीं मिलती अब ?" मैंने दूसरा प्रश्न किया।

मातादीन आँखें झपकाता हुआ पशु-रक्षा-विभाग के अधिकारी की ओर देखने लगा—वह अधिकारी जान गया कि यह मज़दूर कुछ कहना चाहता है—परन्तु उसकी उपस्थिति नहीं चाहता। वह स्वयं वहाँ से हट गया और एक कच्ची दीवार के साथ साथ टहलने लगा, मातादीन बोला—

"क्या कहूँ मालिक! डण्डीदार ने तो हमारी जिंदगी बर्बाद कर दी। किसी की शकल से कोई क्या जाने। बड़ा बदमाश था। जब मुझे काम करते हुए कुछ दिन हो गए तो कहने लगा कुलियों ने स्टोरकीपर से शिकायत कर दी है, फिर भी मैं तुम्हें कष्ट न होने दूँगा, तुम्हें सब कुछ घर पहुँचा दिया करूँगा। दो तीन बार घर पहुँचा तो वह मुझसे पहले वहाँ उपस्थित था।

"और मनभरी कहाँ थी ?" मैंने दम रोकते हुए कहा!

"वह भी अन्दर थी.......सीधी सादी औरत... झाँसे में आ गई। सरकार हम इज्जत वाले आदमी हैं, जब मैंने खरी खरी सुनाईं तो डंडीदार ने खुराक बन्द कर दी और दूसरों से तिगुना काम लेने लगा। अफसर झिड़कने लगे, कुली तङ्ग करने लगे, मैंने इसकी मज़दूरी छोड़ दी और गोदाम में काम करता रहा।"

फिर मातादीन ने अपना कन्धा नंगा किया, उसमें एक बड़े से जख्म में चर्बी दिखाई दे रही थी। मातादीन ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा 'यह बाद में मेस की बोरियां उठाने से हुआ ... मेरी जान ही तो निकल जाती, यदि मैं वहाँ से नौकरी न छोड़ता.. मैंने बदनामी भी सही, मालिक लोग तरह तरह की बातें बनाते हैं।"

पशु-रक्षा विभाग का इन्स्पेक्टर पास आ चुका था, मैंने पाँच का एक नोट उसकी मुट्ठी में दिया। वह बहुत प्रसन्न हुआ। सब काम ठीक ठाक कर देने का वचन दिया। उस समय मुझे मनभरी के भावी शिशु और उसके भविष्य के अतिरिक्त और कुछ न सूझता था। मातादीन का नंगा कंधा अब भी मेरे सामने था। मैंने इन्स्पेक्टर को मातादीन का कंधा दिखाते हुए पूछा "क्या आपका विभाग ऐसे अन्याय को नहीं रोकता ? इन्स्पेक्टर साहिब ने जेब में पाँच का नोट टटोलते और अपने पालिश किए हुए बूटों पर छड़ी मारते हुए कहा, "चौधरी जी··· वह तो केवल पशुओं के लिए है।"

मैंने मातादीन को मज़दूर रख लिया।

सड़कों और इमारतों के बड़े इञ्जीनीयर ने इर्फ़ानी की बनाई हुई एजर्टन रोड नाक़स बताई। बड़े इञ्जीनीयर के साथ रिश्वत न चल सकी और एक बार फिर एजर्टन रोड पर 'रोड अप' के बोर्ड रख दिए गए।

फिर नर्सरी में कुच छोकरे सड़क पर से कंकर उठा उठाकर उन्हें हवा में छोड़ते हुए दिखाई देने लगे, वह गोफिए को छोड़ते हुए ऊँची आवाज़ से 'अल्ला अकबर' पुकारते सुनाई देते थे—मातादीन का छोटा भाई मुनीसर काम करने के बाद दो एक कोलतार के खाली टीनों के पीछे पड़ कर सुस्ताने लगा। 'रोड अप' को फलाँगते हुए मैं उसके पास पहुँचा। मैंने चिल्लाते हुए कहा, "हे मुनीसर।"

मुनीसर घबरा कर बोला, 'मालिक।'

"हाँ·····'मालिक!" "मैंने कहा "सुस्ता रहे थे न ? और मातादीन कहाँ है ? उसकी चार दिन से गैरहाज़िरी लग रही है।

मुनीसर ने दबी आवाज़ से कहा···"मातादीन हवालात में है

सरकार।"

मैं अपनी जगह से उछल पड़ा—'हवालात में।'

मुनीसर ने बताया कि मातादीन ने एक डाक्टर के यहाँ चोरी की और भाभी को एक सफ़ेद सी दवाई पिलाई—तत्पश्चात् पकड़ा गया। पुलीस आई तो डब्बा घर में मिला। भाभी इसमें से आधी दवाई खा चुकी थी।" मैं सब कुछ समझ गया, मैंने घूम कर काम करती हुई स्त्रियों की ओर देखा, मुझे वे सब की सब बीमार दिखाई देने लगीं, जैसे उन्हें बड़े बड़े वरम हो रहे हों। मेरी कल्पना में मनभरी का हौलदली के पत्थर सा पीत चेहरा प्रगट हो गया। मुझे मातादीन से बहुत लगाव हो गया था, मैं हवालात में गया तो देखा कि मातादीन मुस्करा रहा था और उसकी मुसकान मिथ्या न थी। उसे अपनी क़ैद का रत्ती भर भी विचार न था। वह प्रसन्न था कि उसके वरम ठीक हो जायँगे—वह प्रसन्न था कि मुनीसर के यहाँ वह आराम से रह कर एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देगी—पर मातादीन क्या जाने कि शोकावेग से मनभरी का गर्भपात हो गया है। वह मुनीसर की भुजाओं में जीवन की अन्तिम साँसें ले रही है और रक्त से मुनीसर की झोंपड़ी की सारी भूमि सिंगरफी हो रही है।

———

भोला

मैंने माया को पत्थर की एक कटोरी में माखन रखते देखा, छाछ की खटाई को दूर करने के लिए माया ने कूएँ के स्वच्छ जल से कटोरी में पड़े हुए माखन को कई बार धोया, इस प्रकार माखन को एकत्र करने का कोई विशेष कारण था, ऐसी बात साधारणतया माया के किसी प्रिय के आगमन का परिचय देती थी। हाँ ''' अब मुझे याद आया दो दिन पश्चात् माया का भाई अपनी विधवा बहन से राखी बँधवाने के लिए आने वाला था। वैसे तो प्रायः बहनें भाइयों के पास जाकर राखी बाँधती हैं परन्तु माया का भाई अपनी बहन और भाँजे से मिलने के लिए स्वयं ही आ जाया करता था और राखी बँधवा लिया करता था। राखी बँधवा कर वह अपनी विधवा बहिन को यही विश्वास दिलाता था कि यद्यपि उसका सुहाग लुट गया है तो भी जब तक उसका भाई जीवित है, वह उसकी रक्षा, उसके पोषण का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेता है।

नन्हे भोले ने मेरी इस बात का अनुमोदन कर दिया—गन्ना चूसते हुए उसने कहा—

"बाबा परसों मामा जी आएँगे न—?"

मैंने अपने पौत्र को स्नेह से गोद में उठा लिया। भोले का शरीर बहुत कोमल था और उसकी आवाज़ बहुत सुरीली थी जैसे कमल की पत्तियों की कोमलता और उज्ज्वला, गुलाब की लाली और कोयल की मधुर वाणी को एकत्र कर दिया गया हो। यद्यपि

भोला मेरी लम्बी और घनी दाढ़ी से घबरा कर मुझे अपना मुख चूमने न देता था तो भी मैंने ज़बरदस्ती उसके लाल गालों पर प्यार का चिह्न लगा दिया। मैंने मुस्कराते हुए कहा—

"भोले—तेरे मामा जी······तेरी माता जी के क्या होते हैं ?"

भोले ने कुछ सोच कर उत्तर दिया—'मामा जी'

माया ने स्तोत्र पढ़ना छोड़ दिया, और खिल-खिलाकर हँसने लगी। मैं अपनी बहू के इस प्रकार खुलकर हँसने पर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। माया विधवा थी और समाज उस अच्छे वस्त्र पहनने और हर्ष की बात में भाग लेने से भी रोकता था, उसने अपने सभी अच्छे वस्त्र पहनने, हँसने, खेलने की आज्ञा देते हुए समाज की परवा न करने के लिए कहा था परन्तु माया ने स्वयं ही अपने को समाज के हृदय-विदारक नियमों के आधीन कर रखा था। उसने अपने सभी अच्छे वस्त्र और आभूषणों की पिटारी एक सन्दूक में रख बन्द कर चाबी एक जौहड़ में फेंक दी थी।

माया ने हँसते हुए अपना पाठ चालू रक्खा—

हरि हर हरि हर हरि हर हरी
मेरी बेर क्यों देर इतनी करी

फिर इसने अपने लाल को प्यार से बुलाते हुए कहा—

"भोले तुम नन्हीं के क्या होते होते हो ?"

'भाई' भोले ने उत्तर दिया।

"इसी प्रकार तेरे मामा जी मेरे भाई हैं।"

भोला यह बात न समझ सका कि एक ही व्यक्ति किस प्रकार एक ही समय में किसी एक का भाई और अन्य का मामा हो सकता है। वह तो अब तक यही समझता आया था कि उसके

मामा जी उसके बाबा जी के भी मामा जी हैं। भोले ने इस गोरख-धन्धे में पड़ने का यत्न न किया और उचक कर माँ की गोद में जा बैठा और अपनी माँ से गीता सुनाने के लिए जिद करने लगा वह गीता केवल इस कारण सुनता था कि वह कहानियों का शौक़ीन था और गीता के अध्याय के अन्त में माहात्म्य सुनकर वह बहुत प्रसन्न होता और फिर जौहड के किनारे उगी हुई दूब की मखमली तलवारों में बैठकर घण्टों इन माहात्म्यों पर विचार किया करता।

मुझे दोपहर को अपने घर से छै मील दूर अपने किसानों को हल पहुँचाने थे। वृद्ध शरीर, तिस पर दुखों का मारा हुआ। युवावस्था में तीन मन बोझा उठाकर दौड़ा किया, परन्तु अब बीस सेर बोझ के नीचे गर्दन लचकने लगती है, पुत्र की मृत्यु ने आशा को निराशा में बदल कर कमर तोड़ दी थी, अब मैं भोले के सहारे ही जीता था नहीं तो वस्तुत: मैं मर चुका था।

रात्रि को मैं थकान के कारण बिस्तर पर पड़ते ही ऊँघने लगा। थोड़ी देर में माया ने मुझे आवाज़ दी कि दूध पी लो। मैं अपनी वहू के सेवा-भाव पर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ, मैंने उसे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए कहा—

"मुझ वृद्ध की इतनी देख-भाल न किया करो, बेटा।"

भोला अभी तक न सोया था। उसने एक छलांग लगाई और मेरे पेट पर चढ़ गया, बोला—

"बाबा जी आप आज कहानी नहीं सुनाएँगे क्या?"

"नहीं बेटा"—मैंने आकाश पर उदय हुए नक्षत्रों को देखते हुए कहा, "मैं आज बहुत थक गया हूँ—कल दोपहर को सुनाऊँगा।"

भोले ने रूठते हुए कहा, "मैं तुम्हारा भोला नहीं बाबा, मैं माता जी का भोला हूँ।

भोला भी जानता था कि मैंने उसकी ऐसी बात कभी सहन नहीं की। मैं सदैव उससे यह सुनने का अभ्यस्त था कि 'भोला बाबा जी का है और माता जी का नहीं।' परन्तु उस दिन हलों को कन्धे पर उठा कर छै मील तक ले जाने और पैदल ही वापस आने के कारण मैं बहुत थक गया था—सम्भवतः मैं इतना न थकता यदि मेरा नया जूता एड़ी को न दबाता। और इस कारण मेरे पाँव में टीसें न उठतीं—इस असाधारण थकान के कारण मैंने भोले की वह बात भी सहन की। मैं आकाश पर नक्षत्रों को देखने लगा। आकाश के दक्षिणी कोण में एक नक्षत्र मशाल की भाँति उज्ज्वल था। ध्यान से देखने पर वह मद्धम सा होने लगा—मैं ऊँघते ऊँघते सो गया।

प्रातः उठते ही मेरे मन में विचार आया कि भोला सोचता होगा कि कल रात बाबा ने मेरी बात किस तरह सहन की ? मैं इस विचार से काँप गया कि भोले के दिल में कहीं यह ख्याल न आया हो कि अब बाबा मेरी परवा नहीं करता, शायद इसी कारण प्रातः-काल उसने मेरी गोद में आने से इनकार कर दिया और बोला—

"मैं तेरे पास नहीं आऊँगा, बाबा।"

"क्यों भोले ?"

"भोला बाबा जी का नहीं—भोला माता जी का है।"

मैंने भोले को मिठाई के लालच से मना लिया और कुछ ही क्षणों में भोला बाबा जी का बन गया और मेरी गोद में आ गया और अपनी नन्हीं टाँगों के गिर्द मेरे शरीर से लिपटे हुए कम्बल को लपेटने लगा। माया हरिहर स्तोत्र पढ़ रही थी, फिर उसने पावभर माखन निकाला और उसे कटोरी में डाल कर कूएँ के स्वच्छ जल

से छाछ की खटाई को धो डाला। अब माया ने अपने भाई के लिए सेर के लगभग माखन तैयार कर लिया था। मैं बहिन भाई के इस स्नेह भाव पर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था—इतना प्रसन्न कि मेरी आँखों से आँसू टपक पड़े।

मैंने मन में कहा, स्त्री का हृदय स्नेह का सागर होता है, माता-पिता, भाई-बहिन पति-पुत्र सबसे वह बहुत ही स्नेह करती है। और इतना करने पर भी वह खतम नहीं होता, एक हृदय के होते हुए भी वह सब को अपना हृदय दे देती है। भोले ने दोनों हाथ मेरी गालों की झुर्रियों पर रक्खे। माया की ओर से चेहरे को हटा कर अपनी आर कर लिया और बोला—

"बाबा तुम्हें अपना वचन याद है न—?"

"किस बात का—बेटा ?"

"तुम्हें आज दोपहर को मुझे कहानी सुनानी है।"

"हाँ बेटा"—मैंने उसका मुख चूमते हुए कहा—

यह तो भोला ही जानता होगा कि उसने दोपहर के आने की कितनी प्रतीक्षा की होगी। भोले को इस बात का ज्ञान था कि बाबा जी के कहानी सुनाने का समय वही होता है जब वे खाना खाकर उस पलंग पर जा लेटते हैं जिस पर वह बाबा जी या माता जी की सहायता के बिना नहीं चढ़ सकता, अतः समय से आध घंटा पूर्व ही उसने भोजन निकलवाने पर ज़ोर देना शुरू कर दिया, मेरे खाने के लिए नहीं बल्कि अपने कहानी सुनने के चाव से।

मैंने नित्य से आध घंटा पहिले भोजन किया, अभी अन्तिम ग्रास तोड़ा ही था कि पटवारी ने द्वार खटखटाया। उसके हाथ में एक लम्बी सी जरीब थी। उसने कहा कि खानकाह वाले कुएँ पर

आपकी भूमि को नापने के लिए मुझे आज ही फुरसत मिल सकती है फिर नहीं।

दालान की ओर दृष्टि दौड़ाई तो मैंने देखा भोला चारपाई के के चारों ओर घूम कर बिस्तर बिछा रहा था। बिस्तर बिछाने के पश्चात् उसने एक बड़ा सा तकिया भी एक ओर रख दिया और स्वयं पाँयती में पाँव अड़ा कर चारपाई पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगा। यद्यपि भोले का मुझे ज़िद कर शीघ्र भोजन कराना और बिस्तर बिछाकर मेरी सेवा करना अपने स्वार्थ पर अवलम्बित था तो भी एक विचार के मन में आने पर मैंने कहा—

"आखिर माया का बेटा ही है न—ईश्वर इसे चिरञ्जीवी करे।"

मैंने पटवारी से कहा कि तुम ख़ानक़ाह वाले कूएँ की ओर चलो और मैं तुम्हारे पीछे पीछे आ जाऊँगा। जब भोले ने देखा कि मैं बाहर जाने के लिए तैयार हूँ तो उसका चेहरा इस तरह मद्धम पड़ गया जैसे गत रात्रि को आकाश के एक कोण में मशाल की भाँति उज्ज्वल नक्षत्र निरन्तर देखते रहने के कारण मन्द पड़ गया था। माया ने कहा—

"बाबा जी इतनी भी जल्दी क्या है?—ख़ानक़ाह वाला कूआँ कहीं दूर तो भागा नहीं जाता—आप कम से कम आराम तो कर लें।"

"उँ हुं"—मैंने अधरों को दबाकर कहा, पटवारी वापिस चला गया तो फिर यह काम एक मास से पहले न हो सकेगा।"

माया चुप तो हो गई—भोला मुँह बिसूरने लगा, उसकी आँखें गीली सी हो गईं, उसने कहा, "बाबा मेरी कहानी—मेरी कहानी।"

"भोले—मेरे बच्चे, मैंने भोले को टालते हुए कहा—दिन को

कहानी सुनाने से यात्री मार्ग भूल जाते हैं।"

"मार्ग भूल जाते हैं ?" भोले ने सोचते हुए कहा, "बाबा जी तुम झूठ बोलते हो—मैं बाबा जी का भोला नहीं बनता।"

अब जब कि मैं थका हुआ भी नहीं था और पन्द्रह बीस मिनट सुस्ताने के लिए निकाल सकता था, मैं भोले की इस बात को सहज में ही किस प्रकार सहन कर लेता, मैंने अपने कंधे से चादर उतार कर चारपाई की पाँयती पर रखी और अपनी दबती हुई एड़ी को जूती के सपरिश्रम कारावास से मुक्ति दिलाते हुए पलँग पर लेट गया, भोला फिर अपने बाबा का बन गया, लेटते हुए मैंने भोले से कहा—

"अब कोई यात्री मार्ग भूल जाए—तो इसके तुम जिम्मेदार हो।"

और मैंने भोले को मध्याह्न के समय सात राजकुमार और सात राजकुमारियों की एक लम्बी कहानी सुनाई। कहानी में उनके परस्पर विवाह को मैंने विशेष ढंग से वर्णन किया, भोला सदैव इस कहानी को पसन्द किया करता था जिसके अन्त में राजकुमार और राजकुमारी का विवाह हो जाए, परन्तु उस दिन मैंने भोले के मुख पर हर्ष का चिह्न न देखा बलिक वह एक उदास सा मुख बनाए धीमे से काँपता रहा।

—२—

इस विचार से कि पटवारी ख़ानक़ाह वाले कूएँ पर प्रतीक्षा करते करते थक कर अपनी हल्की हल्की झंकार पैदा करने वाली जरीब जेब में डाल कर कहीं अपने गाँव की ओर न हो ले, मैं जल्दी जल्दी परन्तु अपने नए जूते में दबती हुई एड़ी के कारण

लँगड़ाता हुआ भागा। यद्यपि माया ने जूती को सरसों का तेल लगा दिया था तो भी वह तनिक नरम न हुई थी।

सन्ध्या को जब मैं वापिस आया तो मैंने भोले को प्रसन्नता से दालान से आँगन में और आँगन से दालान में उछलते-कूदते देखा। वह लकड़ी के एक डंडे को घोड़ा बना कर उसे भगा रहा था और कहता था—

"चल मामा जी के देस—रे घोड़े—मामा जी के देस।

मामा जी के देस—हाँ हाँ, मामा जी के देस—घोड़े ··

ज्यों ही मैंने दहलीज़ में क़दम रखा भोले ने अपना गाना समाप्त कर दिया और बोला—

"बाबा—मामा जी आएँगे न—?"

"फिर क्या होगा भोले—?" मैंने पूछा

"मामा जी अगनबोट लाएँगे, मामा जी कत्तू (कुत्ता) लाएँगे, मामा जी के सिर पर मक्की के भुट्टों का ढेर होगा न बाबा—हमारे यहाँ तो मक्की होती ही नहीं—बावा, और तो और ऐसी मिठाई लाएँगे जो आपने स्वप्न में भी न देखी होगी।"

मैं हैरान था और सोच रहा था कि किस सूझ से, 'स्वप्न में भी न देखी होगी' के शब्द सात राजकुमार और सात राजकुमारियों वाली कहानी के वर्णन में से उसने याद रक्खे थे। "जीता रहे" मैंने आशीर्वाद देते हुए कहा, बहुत बुद्धिमान लड़का होगा और हमारे नाम को उज्ज्वल करेगा।"

सन्ध्या होते ही भोला द्वार पर जा बैठा जिससे कि मामा जी शकल देखते ही भीतर की ओर दौड़े और सर्वप्रथम अपनी माता जी को और फिर मुझे अपने मामा जी के आने का समाचार सुनाए।

दियों को दियासलाई दिखाई गई। ज्यों ज्यों रात्रि का अँधेरा गंभीर होता जाता, दियों की रोशनी अधिक होती जाती। चिन्तित भाव से माया ने कहा—

'बाबा जी—भैया अभी नहीं आए।"

'किसी काम के कारण ठहर गए होंगे।"

"संभव है कोई आवश्यक काम आ पड़ा हो—राखी के रुपये डाक से भेज देंगे।

"परन्तु राखी ?"

"हाँ राखी की कहो ...... इन्हें अब तक तो आ जाना चाहिए था।"

मैंने भोले को ज़बरदस्ती द्वार की दहलीज़ पर से उठाया। भोले ने अपनी माता से भी अधिक चिन्तित भाव से कहा—"माता जी, मामा जी क्यों नहीं आए ?"

माया ने भोले को गोद में उठाते हुए और प्यार करते हुए कहा. "शायद सवेरे आ जाएँ--तेरे मामा जी—मेरे भोले।"

फिर भोले ने अपनी कोमल भुजाओं को अपनी माँ के गले में डालते हुए कहा--

"मेरे मामा जी तुम्हारे क्या होते हैं ?"

"जो तुम नन्हीं के हो।"

"भाई ?"

"तुम जानो—"

"और बंसी (भोले का मित्र) के क्या होते हैं ?"

"कुछ भी नहीं।"

"भाई भी नहीं ?"

"नहीं—"

और भोला इस अद्‌भुत बात को सोचता हुआ सो गया। जब मैं अपने बिस्तर पर लेटा तो फिर वह मशाल की भाँति उज्ज्वल नक्षत्र आकाश के एक कोण में मेरे घूरने के कारण मन्द होता हुआ दिखाई दिया। मुझे फिर भोले का चेहरा याद आ गया। जो मेरे खानकाह वाले कुएँ को जाने के लिए तैयार होने के कारण इसी प्रकार मंद पड़ गया था। कितनी लालसा है भोले को कहानियाँ सुनने की। वह अपनी माँ को स्तोत्र भी पढ़ने नहीं देता। इतना सा बच्चा गीता को क्या समझे, परन्तु इस कारण कि इसके अध्याय का माहात्म्य एक मनोरञ्जक कहानी होता है वह बड़े धैर्य से अध्याय के समाप्त होने और माहात्म्य के आरम्भ होने की प्रतीक्षा किया करता है।

"माया का भाई अभी तक नहीं आया—संभव है न आए, मैंने दिल में कहा, "उसे अपनी बहन के बड़े स्नेह से एकत्र किये माखन को खाने के लिए तो आ जाना चाहिए।"

मैं नक्षत्रों की ओर देखते देखते ऊँघने लगा। एकाएक माया की आवाज़ से मेरी नींद खुल गई।

वह दूध का कटोरा लिए खड़ी थी।

"मैंने कई बार कहा—तुम मेरे लिए इतनी तकलीफ़ न किया करो।" मैंने कहा।

दूध पीने के बाद वात्सल्यातिरेक से मेरे आँसू निकल आए। मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर माया को यही आशीर्वाद दे सकता था न कि वह सौभाग्यवती रहे। कुछ ऐसा ही मैंने कहना चाहा—आह! परन्तु इस विचार के आने से कि उसका सुहाग तो वर्ष हुए लुट गया था। मैंने कुछ न कुछ कहने की इच्छा से अपने आवेग को दबाते हुए कहा—

"बेटी—तुम्हें इस सेवा का फल मिले बिना न रहेगा।"

फिर मेरे पार्श्व में बिछी चारपाई पर से भोला नन्हीं को जो कि उसके साथ ही सो रही थी परे धकेलते हुए और आँखें मलते हुए उठा। उठते ही उसने कहा—

"बाबा—मामा जी अभी तक क्यों नहीं आए ?"

"आ जायँगे – बेटा सो जाओ, वे प्रातः सवेरे ही आ जायँगे।"

अपने बेटे को अपने मामा के लिए इतना व्यग्र देख कर माया भी कुछ विचलित सी हो गई, ठीक उसी प्रकार जैसे एक ज्योति से दूसरी ज्योति उज्ज्वल हो जाती है। कुछ समय पश्चात् वह भोले को लिटा कर थपकने लगी।

माया की आँखों में भी नींद आने लगी—वैसे भी युवावस्था में निद्रा का प्रभाव होता है और फिर दिन भर काम काज करके थक जाने से माया गहरी निद्रा सोती थी। मेरी निद्रा तो साधारण वृद्धों की सी निद्रा थी। कभी एकाध घंटा तक सो लेता फिर दो घण्टे जागता रहता—फिर कुछ देर ऊँघने लग जाता और शेष रात्रि तारे गिनते काट देता। मैंने माया को सो जाने के लिए कहा और भोले को अपने पास लिटा लिया।

"बत्ती जलती रहने दो, केवल धीमी कर दो—मेले के कारण बहुत से चोर-चकार इधर उधर घूम रहे हैं"—मैंने सोई हुई माया से कहा।

सबसे बड़ी बात यह थी कि इस बार मेले पर जो लोग आए थे उनमें ऐसे आदमी भी थे जो कि छोटे छोटे बच्चों को चुरा कर ले जाते। पड़ोस के एक गाँव में ऐसी घटनाएँ हुई थीं और इसी लिए मैंने भोले को अपने पास लिटा लिया था। मैंने देखा भोला जाग रहा था। तदनन्तर मेरी आँख लग गई।

थोड़ी देर बाद जब मेरी आँख खुली तो मैंने बत्ती को दीवार पर न देखा। मैंने घबरा कर हाथ पसारा तो देखा कि भोला भी बिस्तर पर न था। मैंने अन्धों की तरह द्वार और दीवार से टकराते और ठोकरें खाते हुए सादी चारपाइयों पर देखा, माया को भी जगाया, घर का कोना कोना छाना—भोला कहीं न था !

—३—

"माया हम लुट गए" मैंने अपना सिर पीटते हुए कहा।

माया माँ थी, उसका कलेजा किस प्रकार विदीर्ण हुआ, यह कोई उसी से पूछे। अपने सुहाग लुटने पर उसने इतने बाल न नोचे थे जितने कि उसने उस समय नोचे। उसका दिल बैठा जा रहा था और वह दीवानों की तरह चीखें मार रही थी। पास पड़ोस की स्त्रियाँ शोर सुनकर एकत्रित हो गईं और भोले के खोए जाने की खबर सुन कर रोने पीटने लगीं।

मैं स्त्रियों से भी अधिक पीट रहा था। आज मैंने एक बाजीगर को अपने घर के अन्दर घूरते भी देखा था, परन्तु मैंने परवा नहीं की थी—आह ! वह समय कहाँ से हाथ आए। मैंने प्रार्थना की कि किसी समय का दिया लिया काम आ जाए—मन्नतें मानीं कि कि भोला मिल जाए। वही अँधेरे घर का उजाला था, उसी के दम से मैं और माया जीते थे। उसी की आस से हम उड़े फिरते थे—वही हमारे नेत्रों की ज्योति, वही हमारे शरीर की शक्ति था। उसके बिना हम कुछ न थे।

मैंने घूम कर देखा, माया बेसुध पड़ी थी उसके हाथ अन्दर की ओर जुड़ गए थे, नसें खिची हुई और आँखें पथराई हुई थीं। स्त्रियाँ उसकी नाक बन्द करके एक चम्मच से उसके दाँत खोलने का यत्न कर रही थीं।

मैं सच कहता हूँ एक क्षण के लिए मैं भोले को भी भूल गया! मेरे पाँव तले की भूमि खिसक गई। एक साथ घर के दो प्राणी जब देखते देखते हाथों से चले जाएँ तो उस समय हृदय की क्या दशा होती है? मैंने काँपते हुए ईश्वर को बुरा भला कहा, कि इन दु:खों के देखने से पूर्व उसने मेरी जान क्यों न ले ली, आह! जिसकी मृत्यु आती है उसके सिवा अन्य किसी का बाल तक बाँका नहीं होता।

सम्भव था कि मैं भी माया की तरह गिर पड़ूँ कि माया होश में आ गई। मुझे पहल से कुछ सहारा मिला. मैंने मन में कहा कि मैं ही माया को सहारा दे सकता हूँ और यदि मैं स्वयं इस प्रकार धैर्य छोड़ दूँ तो माया किसी प्रकार नहीं बच सकती, मैंने चेतनता सँभालते हुए कहा—

"माया बेटी—देखो! मेरा इस प्रकार घर बर्बाद न करो, धीरज रखो। जिनके कभी बच्चे चुरा लिए गए हैं, अन्त में मिल भी जाते रहे हैं। बाजीगर बच्चों को मारने के लिए नहीं ले जाते, पाल कर बड़ा करके किसी काम में लाने के लिए ले जाते हैं—भोला मिल जाएगा।"

माँ के लिए यह शब्द निरर्थक थे, मुझे भी अपने इस प्रकार सन्तोष करने पर सन्देह हुआ—जैसे मैं इस कारण चुप हो गया हूँ कि मुझे माया की अपेक्षा भोले से बहुत कम प्यार है, परन्तु नहीं—मैंने कहा, "आदमी को ज़रूर कुछ साहस दिखाना चाहिए।"

उस समय आधी रात इधर थी और आधी उधर जब हमारा पड़ोसी इस दुर्घटना की सूचना थाने में पहुँचाने के लिए जो गाँव से दस कोस दूर नगर में था, चल पड़ा।

ऐसे हम सब हाथ मलते हुए प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगे जिससे कि दिन निकलने पर कुछ सुझाई दे।

एकाएक द्वार खुला और हमने भोले के मामा को भीतर आते देखा। उसकी गोद में भोला था। उसके सिर पर मिठाई की टोकरियाँ और एक हाथ में बत्ती थी। हमें तो जैसे समस्त संसार का वैभव प्राप्त हो गया। माया ने भाई को न पानी पूछा न कुशल-मंगल और उसकी गोद से भोले को छीन कर उसे चूमने लगी। सभी अड़ोसी-पड़ोसियों ने बधाई दी। भोले के मामा ने कहा—

"मुझे किसी काम के कारण देर हो गई थी। विलम्ब से चलने से रात्रि के अन्धकार में मैं अपना मार्ग भूल बैठा था। एकाएक मुझे एक ओर से रोशनी आती दिखाई दी, मैं उसकी ओर बढ़ा। इस भयानक अन्धकार में परशुपुर से आने वाली सड़क पर भोले को बत्ती पकड़े हुए और काँटों में उलझे हुए देख कर मैं चकित रह गया। मैंने उसके उस समय वहाँ आने का कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया—"बाबा जी ने आज दोपहर के समय मुझे कहानी सुनाई थी और कहा था कि दिन के समय कहानी सुनाने में यात्री मार्ग भूल जाते हैं। तुम देर तक न आए तो मैंने यही जाना कि तुम मार्ग भूल गए, और बाबा ने कहा था कि यदि कोई यात्री रास्ता भूल गया तो तुम जिम्मेदार होगे न—!"

پنڈت جواہر لال ہندوستان کے پردھان منتری ہی

यह क्या? हम नहीं जानते थे

सहगामी

ऊपरी दृष्टि से तो यही दिखाई देता है कि केन्द्रीय हस्पताल के वे लोग जिनके संरक्षण में बहुत से निराश और आशायुक्त रोगी रहते हैं, समता के सिद्धांत पर बहुत विश्वास रखते हैं। वे प्रत्येक छोटे बड़े को बिना किसी जाति और धर्म के भेद-भाव के तीस तीस गिरह के खुले पायँचों का पाजामा और खुली खुली बाहों वाली कमीज़ पहना देते हैं जिससे एक विशेष प्रकार की सोंधी सोंधी अपरिचित सी दुर्गंध आती है। कमीज़ घुटने से भी छै गिरह ऊँची होती है कभी कभी इतनी ऊँची कि कमरबन्द दिखाई देने लगता है। केन्द्रीय हस्पताल और केन्द्रीय कारागार के बन्दियों की वेष-भूषा में भेद ही क्या है ? यही न कि हस्पताल के बन्दियों की पोशाक कुछ मटियाले रङ्ग की पर कुछ उजली होती है, परन्तु कारागार के अभागे निवासियों की गन्दी और स्याह पोशाक को शायद ही कभी धोबी का मुँह देखना बदा होता है।

हस्पताल में इन तीस तीस गिरह के खुले पायँचों और ढीली-ढाली कमीज़ों में ढके हुए बदन भी एक ही बनावट के होते हैं। शारीरिक दृष्टि से कोई किञ्चित स्थूल या कोई बहुत क्षीण हो तो हो परन्तु मुख पर एक सी ही ज़र्दी छाई होती है, एक ही भय या चिन्ता होती है जो प्रत्येक के हृदय में व्यग्रता पैदा करती है।

'क्या हम मृत्यु के इस खड्डे से जीवित सकुशल निकल जायँगे ?—और यही चिन्ता इन ग़रीबों को रातों की नींद हराम कर देती है।

सूर्य अस्तप्राय है इस्पताल के क्षेत्र की भग्न दीवार पर ममोले की माता अपने अण्डों के खोल बनाने के लिए चूना कुरेदने आती है और इसी समय उन्हीं तीस तीस गिरह के खुले पाँयचों और ढीली-ढाली कमीज़ों में विवर्ण और विरूप चेहरों वाले लोग मनाही की आज्ञा होने पर भी हस्पताल के क्षेत्र की भग्न दीवार पर आरोग्यता का दृश्य देखने आते हैं और घण्टों निराशा की अवस्था में उस क्रियात्मक जीवन का तमाशा देखा करते हैं।

हस्पताल के सामने एक बिसाती की दुकान पर कुछ युवतियों का जमघटा है। उनकी रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियों के पल्लू स्वतन्त्रता से सिर पर से उड़ रहे हैं, कोई 'हिमानी' की खरीदार है और कोई 'ज़ीनत' की और कोई 'कोरी' की········दुकान के ऊपर छत पर प्रोफ़ेसर की पत्नी चिक के पीछे अपने अधरों पर से लिपिस्टिक की उड़ी हुई सुर्ख़ी को ठीक करती हुई धुँधली धुँधली सी दिखाई देती है।

मेरा साथी अज़ीमुद्दीन खेड़ा मुग़ली—खेड़ा मुग़ल का रहने वाला है। मुग़ली प्रोफ़ेसर की रूपसी पत्नी को देखकर वह एक क्षण के लिए अपने कारबंकल बल्कि अपने अस्तित्व तक को भूल कर कहता है—

"क्या उसके अधरों पर से सुर्ख़ी उड़ गई थी ?"

"देखते नहीं ····अभी प्रोफ़ेसर के कमरे से बाहर आ रही है ···और··· "

"हिश-हिश हिश"—और हमारा दूसरा साथी अक्षरज लाल फिर हमें मृत्युलोक में ले आता है।

सड़क पर एक सब्ज़ उपल कार पूरे ज़ोर से हार्न बजाती हुई गुज़रती है, उसमें बैठे हुए दो वृद्धों की दृष्टि ताँगे में जाती हुई

नववधू की लाल चूड़ियों पर जमी है और नववधू की दृष्टि सड़क के किनारे पर पड़े हुए कूड़े-करकट के ढेर पर जम रही है।

कुछ अल्हड़ छोकरे अपने विशेष निश्शङ्क टप्पे गाते हुए सिनेमा की ओर लपके जा रहे हैं और उनसे कुछ हट कर सँभल सँभल कर चलते हुए एक साधु महात्मा हैं. जिनका एक एक पग शान्ति की खोज में उठता है, वह शान्ति और आनन्द जो कहीं नहीं मिलता ... हस्पताल के फाटक पर दो खोंचे वाले गुथम-गुथा हो रहे हैं। वे दोनों एक ही समय द्वार के ठीक पार्श्व में अपना खोमचा रखना चाहते हैं... कमज़ोर ने पीछे हट कर सबल को एक पत्थर मारा है।

"अरे ओ अधीर और असन्तोषी लोगो, स्वास्थ्य की इस थोड़ी सी प्रसन्नता से जो तुम्हें ऋण के रूप में दी गई है, क्यों लाभ नहीं उठाते ? अरे देखते नहीं, हम तुम्हारे भाई कितने अभागे हैं ?"

"हाँ भाई !—यह सब तन्दुरुस्ती की बातें हैं—अश्वरज लाल कहता है, "शायद हम भी निरोग होकर ऐसा ही करें।"

फिर खेड़ा मुगली उस क़ब्रिस्तान की ओर जो हस्पताल के निकट ही है, देखकर चौंक उठता है और कहता है......

"कल हमारे ही कमरे में... सातवीं चारपाई ....उफ ! मेरा सिर घूम रहा है, मुझे यूँ दिखाई देता है जैसे वह क़ब्रिस्तान हमारी तरफ आ रहा है ....."

"हिश ....श श .... मैं उसे चुप हो जाने लिए कहता हूँ, ऐसी बात न कहो भाई।"

लेकिन यह मुगली के वश की बात न थी। वह ज़ोर से छींकता

है। कारबंकल के साथ उसे इन्फलुएञ्जा ने भी आ दबाया है। उसके नितान्त पीत, शून्य चेहरे पर लाल नोकदार मल से भरी नाक एक अद्भुत वीभत्स दृश्य पैदा कर रही है।

परन्तु फिर भी हमें आरोग्यता की मनोरञ्जक उच्छृङ्खलताएँ आकर्षित कर ही लेती हैं जब कि मुगली एक भयानक ढङ्ग से छींकता है और बहुत से मल-रसयुक्त परमाणु धूप की किरणों में उड़ने लगते हैं। छींकने से मुगली की रीढ़ की हड्डी पर ज़ोर पड़ता है और वह पीड़ा के एक तीव्र अनुभव से कारबंकल पर हाथ रख लेता है। जैसे ही पीड़ा कम होती है उसकी मुड़ी हुई आँखें और हमारे रुके हुए साँस धीरे धीरे वापिस आते हैं, कुछ विश्राम लेने के पश्चात् मुगली कहता है—

"भाई ···· क्या हम इन चूड़े वालियों, इन खोमचे वालों ·· मज़दूरों के साथ चल सकेंगे ?"

"तुम मन मैला न करो मुगली, मैं ····मेरा विचार है कि तुम बिलकुल तन्दुरुस्त हो जाओगे। अश्वरज लाल पहले ही स्वस्थ्य है, परन्तु मैं इन लोगों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाए कभी न चल सकूँगा, देखते नहीं मेरी टाँग को ? बिल्कुल गल ही तो गई है··· कदाचित मैं उस भिक्षुक के साथ साथ चल सकूँ, मुगली मुझे इस बात की परवाह नहीं, भले इसकी तरह मेरी भी टाँग काट ली जाए ···· मैं केवल यह चाहता हूँ कि आरोग्यता की दशा में इस क्षेत्र की दीवार को फलाँग सकूँ ·· ··

और इस प्रकार उन स्वस्थ मनुष्यों के साथ साथ चलने की एक उत्कट इच्छा को पालते हुए हम अपने अपने कमरों की ओर चल देते हैं और ममोले की मादा जो कि मिट्टी के एक ढेर पर बैठी हमारे चले जाने की बड़ी ही अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थी फिर

उसी भग्न दीवार पर अपने अण्डों के खोल बनाने के लिए चूना कुरेदने आती है।

\+ + + +

जब पक्षी उड़ने के लिए अपने पङ्ख तोलता है और अपने पंजे का पिछला भाग पृथ्वी पर से उठा कर उड़ने और बैठने के बीच की अवस्था में होता है तो उसे 'उड़ान अवस्था' कहते हैं। रोगी के लिए इस दशा में बैठना अपशगुन और अमंगल सूचक गिना जाता है। हाँ, जो इस संसार से एड़ियाँ उठा कर शून्य में उड़ना चाहे वह रोगी भले ही इस ढंग से बैठे। खेड़ा मुग़ली इसी तरह बैठा था। मैंने उसे इस प्रकार बैठने से रोका और हमें दरवाज़े से 'गर्टी' आती दिखाई दी।

गर्टी हमारी नर्स थी, उसका पूरा नाम मिस गरट्रूड बेन्सन (Miss Gertrude Benson) था परन्तु हम जैसे कुछ चिर-रोगी उससे इतने परिचित हो गए थे कि उसे उसके ईसाई नाम से बुलाने से तनिक भी नहीं सकुचाते थे और यह छोटी सी रिआयत गर्टी ने स्वयं दे रक्खी थी। वह मुझ पर साधारणतया और खेड़ा मुग़ली पर विशेषतया कृपालु थी। मुगली की उजड्ड और ग्रामीण चेष्टाएँ गर्टी के लिए विनोदजनक थी। लाल कम्बल को एक ओर सरकाते हुए वह प्रायः मुग़ली के पास बैठ जाती, उसके जेहलमी ढंग के कटे बालों में अपनी सुन्दर अँगुलियाँ फेरा करती। जितना वह मुग़ली से स्नेह करती उतना ही उसे भ्रम हो जाता कि स्वास्थ्य उसके लिए असाध्य है, वह कहता—

"वह केवल मेरा मन रखने के लिए मुझे प्यार करती है ....

रोगी को प्रत्येक उपाय से प्रसन्न रखना इनके व्यवसाय की विशेषता है, और फिर गर्टी में करुणाभाव भी तो बहुत है। वह

जानती है कि मेरा अन्त समय बहुत निकट है और फिर इस चेहरे पर रूखा-फीका हास्य भी कभी न खिला करेगा।

"गर्टी ...... गर्टी ......" हम दोनों ने पुकारा।

हस्पताल में कुछ रोगी ऐसे भी थे जिन्हें खाना घर से मँगवा लेने की आज्ञा थी। हम उन भाग्यशालियों में से नहीं थे, हमें हस्पताल की ओर से रोगियों को विशेष पथ्य मिलता था ...... वे भाग्यशाली जब खाना खाकर चीनी के बर्तन दूर रख देते और उनमें सब्ज़ी की पीलाहट और घी की चिकनाहट दिखाई देती तो हमारा मन हमें विद्रोह के लिए उकसाता।

गर्टी के हाथ से हमने खाना छीना, वही नित्य का भोजन। यदि भूख न होती तो इस खाने से हमें रत्ती भर भी रुचि नहीं रही थी। बहुत से दूध में थोड़ा सा सागूदाना तैरता यूँ दिखाई देता जैसे वर्षा के जल में मेंढक के सैकड़ों अंडे छोटे छोटे काले दाग़ों के रूप में एक झिल्ली में लिपटे हुए तैरते नज़र आते हैं।

हमने अकाल-पीड़ित लोगों के विशेष ढंग से एक ही रकाबी में खाना शुरू कर दिया और गर्टी के कहने की बिल्कुल परवाह न की। रोगियों की शुश्रूषा के लिए आए हुए लोग हमें घूरने लगे।

"एक सिक्ख और एक मुसलमान ...... साथ साथ नहीं, एक रकाबी में।"

वे क्या जानें कि हस्पताल के क्षेत्र की चारदीवार से बाहर सब कुछ है परन्तु यहाँ कोई हिन्दू है न मुसलमान, सिक्ख न ईसाई, गौड़ ब्राह्मण और न अछूत ...... यहाँ एक ही जाति के आदमी हैं जिन्हें रोगी कहते हैं और जिनकी मुक्ति आरोग्यता है जिसकी प्राप्ति के लिए वे अपनी समस्त अभिलाषाएँ और बची खुची शक्ति व्यय कर देते हैं।

उस दिन सन्ध्या को हमने फिर स्वस्थ मानवों की मनोरञ्जक उच्छृङ्खलताओं का तमाशा देखा, वही कोलाहल, वही असंतोष। सामने एक 'डबल फ़लाई शाओटी' खेमे के नीचे कुछ एक आदमी दावत उड़ा रहे थे, एक कोने में कुछ बोतलें खुली पड़ी थीं, कभी कभी सोडे 'बज़' की आवाज़ आती। वे लोग हँसते थे, चिल्लाते केले और संगतरों के छिलके एक दूसरे पर फेंक कर निशानेबाजी का अभ्यास करते थे और इस भोज की समस्त शोभा क़ब्रिस्तान की शून्य पृष्ठभूमि के कारण अधिक मुखरित दिखाई दे रही थी। निस्सन्देह जीवन की बहुत सी प्रसन्नताएँ मृत्यु की पृष्ठभूमि की कृपा के बल पर हैं जैसे चाँदनी रात की उज्ज्वलता, रात्रि का अन्धकार और आकाश की श्यामलता की।

खेड़ा मुग़ली ने एकाएक 'उड़ान की बैठक' से उठ कर एक काँपता हुआ पुरजोश हाथ मेरे कन्धे पर रखा और सन्देहात्मक भाव से बोला—

"भाई क्या हम इन लोगों के साथी भी हो सकेंगे?"

मैं कुछ देर गुम-सुम खड़ा आकाश पर उड़ती चंडूलों को देखता रहा फिर मैंने मुग़ली से लिपटते हुए कहा, "हाँ, मुग़ली क्यों नहीं? परन्तु तुम इस तरह बैठा मत करो?

फिर कुछ रुक रुक कर मैंने कहा—

"कल मेरी टाँग का आप्रेशन है··· गर्ली ने मुझे बताया था। शायद आज यह मेरी और तुम्हारी अन्तिम भेंट हो, तुम इन लोगों के साथ कंधे कंधा मिला कर चल सकोगे ··· अश्वराज भी निरोग हो जाएगा ···परन्तु मैं ··· और हम दोनों चुप सिक्त नेत्रों से एक दूसरे को देखते रहे।

फिर खेड़ा मुग़ली ने एक भयानक छींक ली।

दूसरे दिन मेरी टाँग काट ली गई।

पाँचवें दिन मेरी आँख खुली। मैं हिल-जुल नहीं सकता था। मैंने देखा खेड़ा मुग़ली मेरी पाँयती पर बैठा होठों में कुछ पाठ सा कर रहा था। मेरी आँख खुलते हुए देखकर वह मुस्कराने लगा। मैंने अपने शरीर में कुछ शक्ति अनुभव करते हुए उससे लिपटने के लिए हाथ फैला दिए—मैं अपनी टाँग के दुख जाने से बिलबिला उठा और मुग़ली अपने कारबंकल पर ज़ोर पड़ने से।

+ + + +

मुग़ली का कारबंकल अच्छा हो रहा था—इसी समय में मैं निरोग होकर हस्पताल से चला गया। मेरी अनुपस्थिति में मेरी जीवन-संगिनी स्वर्ग सिधार चुकी थी। अब एक शीशम की, सख्त दुहरी लाठी मेरी जीवन संगिनि बन गई थी। पहली और इस जीवन-संगिनी में अन्तर केवल इतना था कि वह मुझे अपने बातूनी स्वभाव से दुखित रखती और यह अपने मौन से दुखिततर।

उसी लाठी को बग़ल में दबाए मैं धीरे धीरे काम पर चला जाता। मुझे अपनी टाँग के कट जाने का तनिक भी शोक न था। मैं इस बात पर प्रसन्न था कि मैं रोगमुक्त ता हो गया और अपनी इच्छा के अनुसार हस्पताल-क्षेत्र की दीवार से बाहर।

एक बार मैं चिकित्सालय के पास से निकला तो आत्मा तक काँप उठी। उस समय मेरे साथी और पीछे आए हुए रोगी निराश भरी निगाहों से हमारी मनोरंजक चेष्टाओं के देखने में मग्न थे ...... और क्षेत्र की भग्न दीवार पर तीन ममोले अपनी तीन काट की दुमों को थरथरा रहे थे मेरे विचार में बड़ा ममोला छोटे ममोलेकी माँ थी

जो हमारी बीमारी के दिनों में उसी दीवार पर उसने अंडों के खोल बनाने के लिए चूने कुरेदने आया करती थी।

उस समय मेरे अतिरिक्त उन रोगियों के कष्ट को कौन जान सकता था। मैंने उन लोगों की मुसीबत पर कुछ आँसू बहाए ······ मुझे सामने बिसाती की दुकान पर कुछ युवा लड़कियों का जमघटा दिखाई दिया। उनकी साड़ियों के पल्ले उसी प्रकार स्वतन्त्रता से सिर से उड़ रहे थे ····· और छत पर चिक के पीछे प्रोफेसर की पत्नी अपनी साड़ी की सिलवटों को ठीक करती हुई धुँधली धुँधली सी दिखाई दे रही थी। मैं एक सन्दिग्ध से भाव के साथ बिसाती की दुकान की ओर बढ़ा और वहाँ से कुछ रङ्गदार, रेशमी फीते अपनी लाठी को सजाने के लिए खरीदे और कुछ अव्यवस्थित खोया खोया और लड़खड़ाता हुआ वापस लौटा।

एक दिन मैं हस्पताल के अन्दर गया तो मैंने देखा मुग़ली का कारबंकल बहुत कुछ ठीक हो चुका था। हाँ अब्बरज की दशा चिन्ताजनक तथा अवर्णनीय थी··· ··· तत्पश्चात् मुझे अपने एक अधिकारी के साथ कुछ सप्ताह के लिए बाहर जाना पड़ा।

मेरे मन में कई बार विचार आया, खेड़ा मुग़ली मुझे कितना कोसता होगा। वह तो पहले ही कहा करता था कि मनुष्य स्वयं सुखी होकर अपने बीते दुःख और दूसरों के कष्ट को जान बूझकर भूल जाया करता है। सब तरह से यह बात सत्य थी। परन्तु कुछ विवशताओं के कारण मेरे सम्बन्ध में लागू नहीं होती थी।

वापस आने पर अवकाश के दिन मैं शफ़ाख़ाने गया।

गर्टी ने एक रूखी मुस्कान से मेरा स्वागत किया। मैं भय से सहम गया। उसने मुझे बताया कि अब्बरज लाल दो दिन हुए

पूर्णतया आरोग्यता प्राप्त कर अजमेर चला गया है, परन्तु गर्टी ने खेड़ा मुग़ली के विषय में कुछ न कहा।

मैं ध्यानपूर्वक पग उठाता हुआ जनरल वार्ड की ओर गया। बरामदे के नीचे हस्पताल के मुलाज़िम कुछ स्त्रियों और बच्चों को रोने से रोक रहे थे। उन स्त्रियों में से एक खेड़ा मुग़ली की वृद्ध और मृतप्राय माँ थी जो अपने बेटे के स्थायी वियोग के शोक में गगन-भेदी चीखें मार रही थी ··· फिर उसकी पत्नी बच्चे···

बरामदे के एक ओर मुग़ली मौत की मीठी नींद सो रहा था। उसे यूँ देखकर मेरी बग़ल में से लाठी गिर पड़ी ··· मैं रो भी न सका।

लोगों ने चुपके से मुग़ली की अर्थी को उठाया—उसे कंधों के बराबर किया और कलमा शहादत पढ़ते हुए चले।

———

दस मिनिट वर्षा में

अबू बकर रोड सन्ध्या के अँधेरे में गुम हो रही है, ऐसा दिखाई देता है जैसे कोई खुला-सा मार्ग किसी कोयले की खान में जा रहा है। सख्त बारिश में बँटा की बाड़, सफ़र्निया का गुलाब, कुतब सैय्यद हुसैन मक्की के मज़ार शरीफ़ के खंडहर, मैं, एक खुलते हुए मुश्की रङ्ग की घोड़ी जिसकी पीठ गीली होकर स्याह साटन की तरह दिखाई दे रही है, सब भीग रहे हैं—और राटा भीग रही है।

राटा कौन है? इसे कल्पवृक्ष कह लो या कामधेनु गाय अथवा इससे बेहतर राटा—राटा है, फिरायालाल की पत्नी, एक दस वर्षीय, आलसी, प्रमादी, मूर्ख छोकरे की माँ। कुछ महीने हुए छाँटी के अवसर पर ह्यूम पाईप कम्पनी वालों ने फिरायालाल को कम्पनी से अलग कर दिया, उस समय से उसके शान्तिमय जीवन में भाग्य के तूफ़ान और झंझावात पैदा होने लगे, काम की खोज में न जाने वह कहाँ चल दिया। सुना है कि वह राटा को सदा के लिए छोड़ गया है, क्योंकि वह उससे प्रेम करती है और जिस व्यक्ति में प्रेम की सी कमज़ोरी हो वह ठुकरा दिया जाता है। मिर्चू तेज़ाबी का कहना है कि पोड़ के एक मर्द नीले से धुँधलके में उसी ने फिराया लाल को अपनी ही बिरादरी की एक स्त्री के साथ जाते देखा था—वही स्त्री—कौड़ी—जो अबू बकर रोड के मकानों में से गमले उठाया करती थी। उन दिनों फिराया लाल बेकार था। बेकार मनुष्य के चिन्तन में हृदय का रक्त पीने अथवा अत्यधिक

प्रेम करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं समाता। कतिपय लोगों ने फिराया को कोट पुतली में सफ़ें बनाते हुए देखा है ! पास ही कौड़ी एक पर-पुरुष के साथ हँस हँस कर बातें कर रही थी……… राटा फिर भी फिरायालाल को हृदय से चाहती थी, यह प्रेम और उन्माद के भाव कभी छूटते हैं ? ···· और राटा भीग रही है।

राटा की मुश्की घोड़ी अब्र-बकर रोड पर हमारी कोठी के सामने घूम रही है। वह उसका अँधेरी रात का सा रंग ···· केवल उसके हिनहिनाने और कभी कभी बिजली के चमकने से उसकी उपस्थिति का ज्ञान होता है। प्रातः से बेचारी को दाना नहीं दिया गया, न ही उसकी मोच वाली टाँग पर हल्दी लगाई गई है। भूख की तीव्रता से बेबस होकर और बिगड़ कर वह आवारा हो रही है, शायद फिराया को ढूँढती होगी। फिराया—जो उसे भी छोड़ कर कौड़ी के साथ चला गया है। कौड़ी—जो कोट पुतली में किसी पर-पुरुष के साथ हँस हँस कर बातें कर रही थी। एक वक्त में एक हृदय के अन्दर मुश्की घोड़ी रह सकती है या कौड़ी या राटा ····· और भूखी मुश्की घोड़ी हिनहिनाती है जैसे कभी सिकन्दर के विलग होने पर बूस फ़ैलस हिनहिनाता था।

राटा अपने सिर से वेणी की ओढ़नी उठाकर पूछती है—

"बाबू जी—आपने यहाँ रामी नहीं देखी ?···· रामी ····· मेरी मुश्की घोड़ी !"

मैंने कहा, "रामी ? कौन रामी ?······अच्छा रामी तुम्हारी मुश्की घोड़ी, अरी ! वह बँटा की बाड़ के पीछे तो खड़ी है, तुम्हें दिखाई नहीं देती क्या ?"

राटा आँखों को सुकेड़ कर बाढ़ की ओर देखती है। वास्तव

में जब खुलते हुए मुश्की रंग की घोड़ी सन्ध्या के समय वर्षा में भीग जाती है, तब वह भी अँधेरी रात का एक अंग बन जाती है और प्रकाश रहित हो रोकर ज्योति खोई आँखों को उसे सन्ध्या की तमिस्रा अथवा तमिस्रापूर्ण सन्ध्या से विलग करना बहुत कठिन हो जाता है। वर्षा की रिमझिम, सिरस की लम्बी लम्बी फलियों की खड़खड़, गिरते हुए पत्तों के रुदन, मेघ की गरज, बतखों की बत बत, मेंढकों की टर्राहट, पनालों के शोर, इस कुतिया की ऊँह ऊँह, जिसने अभी अभी सात सात बच्चों का झोल जना है, जो एक बच्चे को मुँह में पकड़े किसी सूखी नरम और गरम स्थान की खोज में है। इन सब के अतिरिक्त क्षुधार्त घोड़ी की हृदय-विदारक हिनहिनाहट अलग सुनाई देती है।

पराशर कहता है, ' मैं भीग रहा हूँ ·······और वह भी भीग रही है।"

माँ रुष्ट होते हुए कहती है, "गीला··· गीला ··· गीला तनूर बिलकुल गिरने वाला हो गया है, एँ ? यह मुई कुतिया तनूर में छुपी बैठी है, मेरा तनूर गिर जायगा। यह असमय की वर्षा— राम रे ·······"

नन्हे बिशन का फराक गिरकर आँगन में पड़ा ऐसा दिखाई देता है जैसे कोई मरी हुई फ़ाख़ता हो, माँ नाराज है, कि मैंने बिशन का फराक क्यों नहीं उठाया जब कि राटा की घोड़ी पकड़ने में सिर से पाँव तक भीग गया। माँ इसके लिए भी रुष्ट है कि मैं पराशर जैसे—नवयुवक के साथ वर्षा में लँगोट बाँध कर नहाने चला हूँ। माँ का विचार है कि मैं भी इसके साथ रह कर निठल्ला हो जाऊँगा। वास्तव में माँ के माथे पर तेवर इसलिए हैं कि मैंने राटा की मुश्की घोड़ी पकड़ने में सहायता की है। घोड़ी को सांध्य-तम से

अलग करते हुए उसको राम राटा के हाथ में दे दी है और इस कार्य में मैं उससे छू गया हूँ।

मैंने कहा, "इसी के प्रायश्चित्त में तो स्नान कर रहा हूँ माँ।"

सत्य तो यह है कि इस प्रकार की मलिनता को मैं पसन्द करता हूँ। पराशर का क्या, वह तो सब प्रकार की मलिनता को पसन्द करता है ...... कदाचित् फिरायालाल कभी न आए और राटा को प्रत्येक काम के लिए हमारा आश्रय लेना पड़े, क्या वह थोड़ी ही पकड़वाएगी, और कोई काम नहीं कहेगी ?

माँ कहती है, लोहार, बढ़ई, चमड़ा रँगने वाले एक ब्राह्मण को चौबीस क़दम से, बीनने वाले चार क़दम से और मोटा मांस खाने वाले चौंसठ क़दम से भ्रष्ट कर सकते हैं, परन्तु मैं माँ से कहता हूँ, "माँ इन लोगों के कारण तो हम जीवित है, ब्राह्मणरूपी खेती की ये बाड़ हैं ... और फिर थोड़ी बहुत बुराई सचाई की रक्षा के लिए प्रलयकाल से जीवित हैं। माँ कहती है, "कलयुग है बेटा घार कलयुग।"

देखने को तो माँ विशन से बातें करती है परन्तु वास्तव में इसका उद्देश्य सब कुछ मुझे सुनाना होता है। "महायुग ब्रह्मा का एक दिन है, सतयुग त्रेता, द्वापर इतने लाख वर्षों के हैं, कलियुग चार लाख बत्तीस वर्षों का है, गत वर्ष चैत्र मास में कलियुग को केवल पाँच हजार छब्बीस वर्ष व्यतीत हुए हैं, राम जाने अभी कितने शेष है—और यह असमय की वर्षा।"

"वर्षा ने काफ़ी सर्दी पैदा कर दी है।" मैंने कहा।

"हाँ भाई मेरे तो दाँत बजने लगे। चलो बरामदे में चलें।"

"लेकिन अभी बहुत वक्त तो नहीं हुआ।"

"चाय बना दो न—सर्दी हो रही है।"

"कोई बात नहीं, बीडियाँ जो हैं मेरी जेब में।"

"हमारे टी सिन्डीकेट को आजकल वर्षा बहुत लाभदायक है।"

"हाँ—चाय के पौदों की ढलान दक्षिण की ओर है, अबू बकर रोड का सारा पानी उधर नहीं जाता, परन्तु अधिक बौछार चाय के पौदों के लिए हानिकारक है। जड़ें गल जाने का भय है, हल्की हल्की फुहार का तो कहना ही क्या ...."

"कुछ भी हो, यह वर्षा एसोसियेटड सिंडीकेट के लिए लाभकारी सिद्ध होगी, हमारी आय बढ़ जायगी, क्यों ? है न।"

"हाँ।"

"ईश्वर अपनी दया वर्षा द्वारा भेजता है।"

"हाँ—दया ....आय—अरे ! राटा की झोंपड़ी की खपरैल उड़ रही है।"

"ईश्वर की दया........"

अब वर्षा बहुत अधिक होने लगी है जैसे सब की सब अबू बकर रोड पर ही बरस पड़ेगी। नकटेसर के पत्ते बतख़ के पदों की नाईं भीगते नहीं। जल-बिन्दु इन पर पारद की तरह लुढ़कते हैं, कहीं कहीं अटक कर एक हीरे की भाँति दिखाई देते हैं, कुछ समय पश्चात् एक और बिन्दु वहीं टपकता है तो हीरा अधिक—और बड़ा हो जाता है। परन्तु कोमल कोमल 'रात की रानी' के पुष्प इस बौछार की ताब नहीं ला सकते...अबू बकर रोड के दोनों ओर कोठियों में बसने वाले लोग नकटेसर के पत्तों की तरह हैं। वर्षा इनकी स्लेट की छत्तों पर से बहती लुढ़कती हुई अबू बकर रोड पर आ रही है, वर्षा-बिन्दु उनके लिए—हीरे हैं ...... परन्तु रात की रानी—राटा सिर फेंक देती है, बार बार सिर उठा कर खपरैल को

बाँधना शुरू कर देती है और अपने भीगते हुए बालों के कारण दुगन वेलिया की सुन्दर लता दिखाई देती है।

पहले बेचारी मुश्की घोड़ी को ढूँढ़ती फिरती थी अब यह उसके लिए नई मुसीबत है। झोंपड़ी की सारी छत से पानी बहने लगा है, बोरिए की ओढ़नी तो नाम मात्र का आश्रय है, उसके सब कपड़े भीग कर शरीर के साथ चिपक गए हैं। सन्ध्या के अन्धकार में जब बिजली चमकती है तो वह नग्न सी दिखाई देती है।

वर्षा में ईश्वर की दया से कोई गरम गरम वस्त्रों से विभूषित होता है तो कोई नग्न हो जाता है, किसी की आय दुगनी हो जाती है तो किसी की खपरैल टूट जाती है ···कोई रात समूर में और कोई तनूर में व्यतीत करता है।

दुगन वेलिया की लता को जब तीव्र वायु हिलाती है तो इस तरह दिखाई देता है जैसे कोई सुन्दरी सिर धोने के बाद छत के किनारे अपने चमकीले काले बालों को ज़ोर से निचोड़ कर दोनों हाथों से छाँटती है। राटा का बुद्धिहीन, आलसी—पागल लड़का झोंपड़ी में सोया पड़ा है, बुझते हुए चूल्हे के पास, गरम होकर—यदि वह जागता होता, तो मुश्की घोड़ी पकड़ने के लिए उसकी माँ को मेरे आश्रित न होना पड़ता···· फिरायालाल तो चला ही गया है। कदाचित वह आलसी लड़का सदा की नींद सो जाए।

शायद राटा खपरैल बँधवाने के लिए हमें बुलाए, उसके वर्षा के कारण शरीर के साथ चिपके हुए वस्त्र, बिजली की चमक में उसका शरीर कितना सुन्दर और सुडौल दिखाई देता है, परन्तु माँ··· माँ कहती है कलजुग है।

कलकत्ता मारकेट में चाय कितनी बिकेगी? कितनी विदेश को

जाएगी, मेरी आय बढ़ जाएगी, पराशर की भी ········ परन्तु वह कम्बख्त, बीड़ियाँ पिएगा, चाय के प्यालों के प्याले और शराब और ········ ···

"तुझे निकले गिलटी, हैजे के तोड़े··· सोये का सोया रह जाय तू··· " राटा अपने छोकरे को गालियाँ देती है।

राटा को चाय की आवश्यकता नहीं। गालियाँ देते हुए उसके शरीर में यथेष्ट गरमी आ गई है। वह निकम्मा, सुस्त लड़का, उसके साथ खपरैल भी तो नहीं बँधवाता। आराम से बुझते हुए चूल्हे के पास पड़ रहा है। पानी की छींटें पड़ती हैं तो टाँगें सुकेड़ लेता है। जब अन्दर पानी ही पानी हो जाएगा तो वह आँखें मलता हुआ उठेगा, केवल इतना कहेगा, माँ क्या बात है जो इतना कोलाहल कर रक्खा है? चैन से सोने भी नहीं देती ······ —जैसे कोई बात ही नहीं, वह तो शायद यह भी कहे मैंने ऐसी औरत के घर क्यों जन्म लिया जो ऐसी ऐसी गालियाँ देती है, जिसे मेरी कोई ज़रूरत नहीं। कहती है सोए का सोया रह जाए तू ···वह मूर्ख क्या जाने कि जब माँ यह कहती है कि तू सोए का सोया रह जाए तो उस समय वह उसे सदा की नींद से बचाने के लिए वर्षा और वायु के तूफ़ान में बिलकुल अकेली असहाय अपनी जान तक लड़ा देती है।

अभी अत्यन्त क्षुधा के कारण उसकी मुश्की घोड़ी हिनहिना रही थी जैसे सिकन्दर से अलग होने पर बूसफेलस हिनहिनाता था, परन्तु अब वह मौन है। सम्भवतः उसने राटा की विवशता को देख लिया है, और फिराया के प्यार को—अब वह कभी नहीं हिनहिनाएगी।

पराशर बोला, "वह एक बार सहायता के लिए इशारा तो करे।"

"हाँ—और हम दोनों ......" मैंने उत्तर दिया।

"मैं कहता हूँ, क्यों न हम स्वयं ही चले जाएँ।"

"पर माँ कहती है, कलजुग को केवल पाँच हज़ार वर्ष व्यतीत हुए हैं, राम जाने अभी कितने शेष हैं।"

"फिर वही गालियाँ......"

"तुझे आए ढाई घड़ी की ...निकले तेरा जनाज़ा, लच-लचाता वा-गोर में पटे ......खून थूके तू ......"

शायद वह छोकरा सोचता होगा, मैं क्यों इस स्त्री के घर पैदा हो गया जो मुझे गोर में भेजना चाहती है, वह मूर्ख क्या जाने कि वास्तव में वह उसे जल की गोर से बचाने के लिए अपनी जान तक लड़ा रही है। वह दश वर्षीय निष्क्रिय, प्रमादी, आलस्य-प्रिय छोकरा अब तक अपने स्थान से नहीं टला। केवल इसलिए कि राटा को उससे स्नेह है, जिसका इस मृतप्राय युवक को ज्ञान है, वही राटा के जीवन का सहारा है। वही इसके आँखों की ज्योति है, इसीलिए तो वह निराश और अन्धी है ... यदि राटा फिराया-लाल को प्रेम न करती, यदि वह इस छोकरे पर अपनी सब आशा न लगा देती तो सुखी हो जाती।

अबू बकर रोड चलती हुई कोयले की खान में जाती हुई दिखाई देती है। बहाव के विरुद्ध एक किसान भीगता हुआ धीरे धीरे इसी ओर आ रहा है। उसके हाथ में एक बैल की रस्सी है, शायद वह बैल को कहीं से चुरा लाया है। सम्भवतः उसकी इच्छा यही है कि हम उसे बरामदे में कुछ देर ठहरने के लिए जगह दें, और यह सम्भव नहीं, कौन जाने बैल गोबर से बरामदे का फर्श खराब कर दे

और माँ ····· फिर चोरी के माल को अपने पास रखना ·····

"बाबू जी सलाम" किसान बोला।

"सलाम" पराशर ने अधर दबा कर कहा।

फिर वह काँपते हुए हाथों में से एक गीला कागज़ पराशर के हाथ में दे देता है—परवाना राहदारी। यह इस बात का प्रमाण है कि बैल चोरी का माल नहीं अपना है, जिसे वह तालमहल की मण्डी में बेचने के लिए ले जा रहा है—

बाइस तहरीर आंकि

एक रास गाय नर जिसके सींग अन्दर की ओर मुड़े हुए हैं दुम के स्याह बालों में सफ़ेद ·····

और शेष वर्षा ने धो दिया है, कितने असम्बद्ध होते हैं ये किसान लोग, पहले सींग और फिर दुम, आकाश पाताल का अंतर, इनके लिए जैसे दुम और सींगों में कोई भेद नहीं। शरीर का रङ्ग पहले आना चाहिए था, मखमल जैसा शरीर जो बारिश में गीला होकर सफेद साटन की तरह दिखाई देता है। अँधेरे में इसका सफ़ेद रङ्ग नजर आता है, पर जब बिजली चमकती है तो बैल बिजली का एक अंश बन जाता है ········· बैल सारी शक्ति से हाँफता है जैसे शिव जी महाराज को देख कर प्यार से उनका नन्दी गण हाँफ रहा हो। बैल प्रातःकाल से भूखा है फिर भी अपने वृद्ध छलिए मालिक को प्यार किए जाता है। यद्यपि वह पशु-बुद्धि से जानता है कि वृद्ध कल तालमहल की मंडी में उसे बेच डालेगा—हाय, यह स्नेह और पागलपन के भाव छूटते हैं?"

"क्यों बेचते हो इस सुन्दर बैल को?"

"बाबू जी ·····फ़सलें नष्ट हो गई हैं और लगान देना है

उफ़, यह कुसमय की वर्षा। क्या मैं अन्दर आ जाऊँ, इस छत के नीचे ?"

"ऊँ हुँ—तुम्हारा यह बैल गोबर से बरामदे को ख़राब कर देगा।"

"मैं साफ़ कर दूँगा बाबू जी—शीशे की तरह ... बैल सवेरे से ही भूखा है, इतनी सर्दी कहाँ सहन करेगा और फिर दूसरी बात नहीं, यह परवाना राहदारी धुल गया तो यह बैल चोरी का माल समझा जायगा, तालमहल का थानेदार जहान खाँ बड़ा कड़वा आदमी है, मार मार कर अधमुआ कर देगा। बैल जाता रहेगा, तालमहल में इस बैल के मूल्य पर ही सब आशाएँ लगा रखी हैं ... हाय, यह कुसमय की वर्षा ... "

"जाओ, पराशर ने कहा ... हम तुम्हें यहाँ जगह नहीं दे सकते ..... जाओ ... "

किसान सहम कर चला गया, कभी कभी पीछे मुड़ कर देख लेता जैसे रात को हमारे यहाँ ही सेंध लगाएगा। यदि वह सेंध लगाए भी तो न्यायोचित है, मैंने सोचते हुए कहा।

बैल अबू बकर रोड के चौक पर गिरा पड़ा है, वह किसान के उठाए ..... किसी के उठाए न उठेगा, वह नन्दी गण की तरह किसान को देखकर कभी हाँक नहीं लगाएगा।

फिर मैंने पराशर से कहा, "चाय तैयार है।"

"भाई—कितनी प्यालियाँ पिओगे तुम ?"

"छै।"

"पाराशर—शरारत का टुकड़ा—और दर्जन बीड़ियाँ ?

कह दो हाँ।

"..................."

"ज़्यादह ...."

"छी: "

वर्षा और भी तीव्र हो रही है और ......राटा की गालियों की वर्षा भी।

राटा की खपरैल गिर चुकी है, दीवारों में छेद हो गए हैं, पास ही एक सेठ के तिमंज़िले मकान का परनाला राटा की झोंपड़ी पर गिरने लगा है। झोंपड़ी के चारों ओर अबू बकर रोड पर चलते हुए 'तूफ़ाने नूह' का विचार आता है। क्या हम राटा की सहायता कर सकते हैं ?" कलियुग के होने पर भी ... ।

हमारे बरामदे के अतिरिक्त और निकट कोई आश्रय का स्थान भी तो नहीं है। पराशर प्रसन्न है। उसके पास चाय है, बीड़ियाँ हैं ... और अनाश्रित राटा इधर आ ही जाएगी......।"

राटा चारों ओर देख रही है, पराशर कहता है—

"अभी वह कहेगी, मुझे अपने दामन में छुपा लो, बाबू जी।"

"कभी नहीं" मैंने सिर हिलाते हुए कहा।

"तो इसके अतिरिक्त वश ही क्या है ?"

"यह वर्षा का आश्रय उसके लिए कम है ?......

"राटा की सी औरत को मैं जानता हूँ.........जब किसी ऐसे मनुष्य पर मर्यादा का दामन तंग हो जाता है तो अनायास ही एक बहुत बड़ा दामन उसके लिए खुल जाता है......"

—और राटा की तो मुट्ठियाँ बन्द हैं, कभी कभी वह दाँत पीसते हुए चीख़ती है—

"नवान मरे......कम्मूए.....मैंने रो लिया तुझे बेचैन।"
